प्राचीन राजस्थानी गीत

(भाग १०)

(साहित्य-संस्थान की संकलित सामग्री से सम्पादित)

सम्पादनकर्त्ता
कविराव मोहनसिंह
सांवलदान आशिया

★

साहित्य-संस्थान
राजस्थान विश्व विद्यापीठ, उदयपुर

प्रकाशक
साहित्य-संस्थान
राजस्थान विश्व विद्यापीठ,
उदयपुर

मूल्य २।।।)

मुद्रक
विद्यापीठ प्रेस, उदयपुर

वक्तव्य

साहित्य-संस्थान राजस्थान विद्यापीठ, उदयपुर विगत २१ वर्षो से उदयपुर और राजस्थान में साहित्यिक, सांस्कृतिक, ऐतिहासिक कलात्मक सामग्री एवं शिलालेखों की शोध खोज, संग्रह, संपादन और प्रकाशन कार्य करता आ रहा है। विशेपकर साहित्य-संस्थान ने राजस्थान में यत्र तत्र बिखरे हुए प्राचीन साहित्य, लोक-साहित्य, इतिहास पुरातत्व और कला विषयक वस्तुओं को प्राप्त करने के लिये निरन्तर प्रयत्न किया है। परिणाम स्वरूप लगभग ४० महत्त्वपूर्ण और उपयोगी ग्रन्थों का प्रकाशन होचुका है। साहित्य-संस्थान के अन्तर्गत निम्न लिखित विभाग गतिशील हैं—

(१) प्राचीन साहित्य-विभाग,
(२) लोक साहित्य-विभाग,
(३) इतिहास पुरातत्व-विभाग,
(४) अनुसन्धान पुस्तकालय एवं अध्ययन गृह,
(५) संग्रहालय-विभाग,
(६) राजस्थानी प्राचीन साहित्य-विभाग,
(७) पृथ्वीराज रासो एवं राणा रासो-सम्पादन संशोधन विभाग
(८) भील साहित्य-संग्रह-विभाग,
(९) नव साहित्य-सृजन-विभाग,
(१०) संस्थानीय मुख पत्रिका-'शोध पत्रिका' संपादन विभाग,

(११) संस्कृत–'राज प्रशस्ति' ऐतिहासिक महाकाव्य सम्पादन विभाग

(१२) प्राचीन कला प्रदर्शनी विभाग,

इनके अतिरिक्त 'सामान्य विभाग' के अन्तर्गत अन्यान्य क प्रवृत्तियाँ चलती रहती हैं. उनमें मुख्य २ ये हैं:—

(१) महाकवि सूर्यमल आसन' भाषण माला
(२) म० म० डा० गौरीशंकर 'ओझा आसन ,,
(३) उपन्यास सम्राट् 'प्रेमचद आसन' ,,
(४) निबन्ध–प्रतियोगिताएँ.
(५) भाषण प्रति योगिताएँ,
(६) कवि सम्मेलन
(७) साहित्यकारों एवं महाकवियों के जयन्ति–समारोह ।

इस प्रकार साहित्य–संस्थान, राजस्थान विद्यापीठ, उदयपुर अप सीमित और अत्यल्प साधनों से राजस्थानी साहित्य, संस्कृति और इति हास के क्षेत्रों में विभिन्न विघ्न बाधाओं के होते हुए भी निरन्तर प्रागति कार्य कर रहा है। राजस्थान के गौरव–गरिमा की महिमामयी झाँ अतीत के पृष्ठों में अंकित है; पर आवश्यकता है. उसके पृष्ठों को खोल की। साहित्य–संस्थान नम्रता के साथ इसी ओर अग्रसर है और प्रस्तु पुस्तक साहित्य–संस्थान के तत्वावधान में तैयार करवाई गई है।

साहित्य–संस्थान के संग्राहकों ने अनेक स्थानों में घूम घूम औ ढूँढ ढूँढ़ कर २२००० के लगभग छन्दों का और प्राचीन हस्त लिखि अनेक उपयोगी ग्रंथों का भी संग्रह किया है। इनमें विविध प्रकार प्राचीन छन्द सुरक्षित है। विभिन्न प्रकार की ऐतिहासिक घटनाओं ए व्यक्तियों आदि का वर्णन मिलता है। ये विभिन्न प्रकार के गीत औ छन्द लाखों की संख्या मे राजस्थान के नगरों, कस्बों एव गाँवों में बिख

पड़े हुए हैं। इनके प्रकाशन से एक ओर साहित्यकारों को राजस्थानी साहित्य का परिचय मिल सकेगा, तो दूसरी ओर इतिहास सम्बन्धी घटनाओं पर भी प्रकाश पड़ेगा। साहित्य-संस्थान राजस्थान में पहली संस्था है, जो शोध-खोज के क्षेत्र में नियमित काम करती चली आरही है।

इस प्रकार के संग्रह अब तक कई निकाले जासकते थे; किन्तु साधन सुविधाओं के अभाव में साहित्य-संस्थान विवश था। इस वर्ष प्राचीन राजस्थानी साहित्य और लोक साहित्य के प्रकाशनार्थ भारत सरकार के शिक्षा-विकास सचिवालय ने साहित्य-संस्थान के लिये कृपा कर ५७,०००) सत्तावन हजार रुपयों की योजना स्वीकार की है। इसी योजना के अन्तर्गत प्रस्तुत पुस्तक का भी प्रकाशन कार्य सम्पन्न हो सका है। ऐसे २ उपयोगी कार्यों को प्रकाश में लाने के कारण हमारी सरकार के गौरव में ही वृद्धि हुई है।

इस सहायता को दिलाने में राजस्थान के मुख्य मन्त्री माननीय श्री मोहनलालजी सुखाड़िया और उनके शिक्षा सचिवालय के अधिकारियों का पूरा २ योग रहा है। इसके लिये हम उनके प्रति अपनी हार्दिक कृतज्ञता प्रकट करते हैं। साथ ही भारत सरकार के उपशिक्षा सलाहकार डा० डी० पी० शुक्ला, डा० मान तथा श्री सोहनसिंह एम. ए. (लन्दन) के भी अत्यन्त आभारी हैं, जिन्होंने सहायता की रकम शीघ्र और समय पर दिलवा दी। सच तो यह है कि उक्त महानुभावों की प्रेरणा और सहायता से ही यह रकम मिल सकी है और संस्थान अपने ग्रन्थों का प्रकाशन करवा सका है। भारत सरकार के राज्यशिक्षा मन्त्री डा० कालूलालजी श्रीमाली के प्रति किन शब्दों में कृतज्ञता प्रकट की जाय? यह तो उन्हीं का अपना कार्य है। उनके सुझाव और उनकी प्रेरणा से संस्थान के प्रत्येक कार्य में निरन्तर विकास और विस्तार होता रहा है और

भविष्य में भी होता ही रहेगा। इसी आशा और विश्वास के साथ हम उनका हृदय से आभार मानते हैं।

हमें विश्वास है कि हमारी भारत सरकार एवं राजस्थान सरकार इसी प्रकार साहित्य-संस्थान की प्रवृत्तियों के लिये सहायता एवं सहयोग देकर हमारे उत्साह को बढ़ाती रहेंगी, जिससे इस महान् देश की सांस्कृतिक प्राणभूत प्रवृत्तियों के द्वारा राष्ट्रीय चिर स्थायी कार्य किये जासकें।

हम उन सब सज्जनों और विद्वानों के भी आभारी हैं, जिन्होंने इस कार्य के संकलन, सम्पादन और संशोधन में सहयोग एवं सहायता दी है।

विनीत
मोहनलाल व्यास शास्त्री
मंत्री
साहित्य-संस्थान

विनीत
भगवतीलाल भट्ट
अध्यक्ष
साहित्य-संस्थान

सम्पादकीय—

किसी राजस्थानी कवि ने ठीक ही कहा है:—

"बड़ा कहे सो पाधरी, अव्यंगा हो व्यंग।"

अर्थात् प्रसिद्धि पाया हुआ व्यक्ति चाहे तथ्य युक्त या तथ्य हीन जैसा भी कहदे वैसा लोग मान लेते हैं। उसी के अनुसार इतिहास-कारों ने अधिकतर शिला लेखों को ही मूल आधार माना है या उन्हीं से सम्बन्धित कुछ पुस्तकों तथा लोक चर्चाओं को काम में लिया है, जिससे लोक इतिहास को वहीं तक सीमित मानने लग गये हैं

कवियों द्वारा की गई रचनाओं की ओर इतिहास-कारों का विशेष ध्यान नहीं गया। यदि वे इस प्रकार की रचनाओं का संग्रह कर उन्हें समझ इतिहास लिखते तो इतिहास का और भी सुन्दर रूप वन जाता।

प्रशस्तियों में राजाओं के अतिरिक्त साधारण योद्धाओं पर प्रकाश कम ही पड़ा है, जिससे वीर होते हुए भी सामान्य व्यक्ति का चरित्र लुप्त प्राय है। किन्तु कवियों की लेखनी इस बात में राजाओं पर ही नहीं साधारण से साधारण राजपूत की वीरता पर भी प्रकाश डालती रही है। कवि हृदय उदार होता है, उसके सामने सम्राट् और साधारण व्यक्ति समान रूप में हैं, वह वीर, धीर, गुणज्ञ आदि का पारखी है। यह गुण चाहे सामान्य व्यक्ति में भी होगा, तो वह उसका सम्मान करेगा और यश-गान में भी अपनी तूलिका तोड़ देगा। यदि

उपरोक्त गुणों से वञ्चित रहा तो चाहे राजा भी क्यों न हो, वह उस को घृणा की दृष्टि से देखेगा। यदि किसी ने राजा होने के नाते उस पर कुछ लिखा भी तो वह अतिशयोक्ति पूर्ण कहा जायगा, किन्तु सामान्य व्यक्ति पर लिखी गई रचना अधिकतर सत्यता पर प्रकाश डालेगी।

इसी संग्रह में हम देखते हैं तो केवल ५-६ राजाओं पर ही लिखे गये पद्य मिलते हैं। अन्य सारा वर्णन राजपूतों पर ही हुआ है। राजाओं के वर्णन को इतिहास की कसौटी पर कसते हैं, तो खरे नहीं उतरते।

जैसेः—

कुमार अभयसिंह के वर्णन में कवि लिखता है कि अमरसिंह के आतङ्क से हरमायें उर्ध्वश्वास लेती हुई बगल में वस्त्राभरण की पेटियें लिये हुए भागने की इच्छा से इधर उधर देखती हुई बँदरी सी दिखाई दी—

"मंजूसड़ी लीधां बगला में,
हुरम हुलक बानरी हुई"।

यह सभव है कि अभयसिंह ने शाहजहाँपुर पर आक्रमण किया हो; किन्तु हरमाओं की ऐसी दशा होना संभव नहीं।

अजीतसिंह की प्रशंसा मे लिखा गया है कि दिल्ली-तख्त पर किसी को स्थापित करना और च्युत करना हे वीर अजीतसिंह! तेरे पर ही निर्भर है—

"दिल्ली री पातसाही तणी बहादर,
थाप ऊथप जिका हाथ थारे"॥

"मानसिंघ ताखा थारा भुजा डंडां तणे माथे,
आखा हिन्दू थान वाला थटाणा आरँभ ।"

इस प्रकार सारे हिन्दुस्तान का भार मानसिंह की भुजाओं पर लादाजाना कैसे माना जा सकता है ?

आदि वर्णन ध्यान पूर्वक पढने से अतिशयोक्ति पूर्ण ही कहा जायगा, लेकिन मध्यम और सामान्य श्रेणी के राजपूतों का वर्णन विचार करने पर सत्य घटनाओं को लिए हुए प्रतीत होता है. जिन्होंने देश और स्वामि के लिये युद्ध में प्राण देकर मरु प्रदेश को कान्तिवान कर दिया—

"कोढणे जल चाढे नवकोटे
मोटे प्रवि सांपने मुवो"

वे अप्सराओं द्वारा भालस्थल पर तिलक लगवाकर जबरदस्ती विमानों में बिठालिये गये—

"तिलक कर निलाटां अपछरां ताणिया,
वरोवर विमाणां वाच बैठाणिया ।"

वे ही नहीं उनके पिता पितामह आदि भी युद्ध में काम आकर यश देवालय की रचना कर गये, उन पर उनके वंशजों ने मारे जाकर ध्वजा चढा दी—

"पित पित्र पितामह पाधरि,
भ्रित देवल ऊतरिया मारि-मारी ॥
पौत्रे धज चाढीतां ऊपरि,
मुजि हरि जीत समाण समहरि" ॥

शत्रुओं पर वीरता प्रदर्शित करते हुए वे शक्ति को शोणित से तृप्त कर यश को यहाँ छोड़ मोक्ष प्राप्त कर गये—

"रँजाड़े ओण, वीरत्ती विभाणे सत्रां,
कीरत्ती रहाड़े मिले मुकत्ती कसंन"।

उन्होंने सबको अपनी वीरता से यह दृढ विश्वास दिला दिया कि इनके धराशायी होने पर ही जोधपुर राज्य पर आपत्ति आ सकती है—

"जालमों पाड़ियाँ पछे ऊथपे जोधाण।'

वाराह स्वरूप होकर वे प्रबल शत्रुओं को मार कर ही मारे गये—

"मरि मारियो घणे मार हथे,
मारू एकल आप मल॥"

इत्यादि पद्य युद्ध-वीर एवं मृत वीरों की अमर कहानी है जिससे हम कोरी कल्पना नहीं कह सकते।

इन रचनाओं के निर्माता नरहर दास बारहठ आदि प्रसिद्ध कवि हो गये हैं जिनका सम्मान राजाओं एवं बादशाओं की सभा में होता था। ऐसे व्यक्तियों ने राजपूत की वीरता पर मुग्ध हो निस्वार्थ रचनायें की हैं। इसी लिये विशेष मान्य है। ज्ञात होता है ये कवि वीरता के पुजारी थे। जिस व्यक्ति से इनका कोई सम्बन्ध नहीं होता फिर भी अगर वह वीर होता तो इनका हृदय उसी की ओर उमड़ पड़ता और इनकी लेखनी भी उन्हीं के चरित्र-चित्रण में चल पड़ती थी।

कहने का तात्पर्य यह है कि इसमें वर्णित पद्य साहित्यिक तो हैं ही किन्तु अधिकतर इतिहास संबंधी हैं जिनमें से बहुत सा वर्णन संभव है इतिहास-कारों की दृष्टि से ओझल रहा हो। अतः उन्हें चाहिये कि इसमें वर्णित पद्यों एवं ऐसी ही रचनाओं को पढकर इतिहास पर नया प्रकाश डालने का कष्ट करेंगे तो उनवीर पुरुषों की अमर कहानी के सम्पर्क से इतिहास नवीन रूप धारण कर और भी लोगों के लिये उपयोगी बन पड़ेगा।

विषय-सूची

———

प्राचीन राजस्थानी गीत

भाग १०

कुमार अमरसिंह (जोधपुर)

—: गीत १ :—

दलांनाथ आगल दिलो वंस रौ दीपयण,
रूप राई तना राउ राठोड़ ।
अमर वणियो मथर धारियै आतपत्र,
माल रो तिलक रिणमाल हर मोड़ ॥ १ ॥

वडा ही वडा आचार दीपै विसाला,
वहै सबलां खलां खेति वागै ।
जग हथे बंधिये गजण रौ जैत हथ,
जग हथां बंधयण विरद जागै ॥ २ ॥

सूर हर सूर सकबंध साहण समंद,
ताघि सामंद्र असमाण तोलै ।
अतग अण रेण अण भंग ऊँचा सिरौ,
वहल खल सार मैं छोल बोले ॥ ३ ॥

वोख मद घोख जस तणा वादित्र घुरै,
जोध सामंत मै थाट जोपै ।
चमर ढलते त्रिपति अभिनमौ चौंड रज,
अमर मेघाडंब-(र) सीसि ओपै ॥ ४ ॥

(रच०—अज्ञात)

अर्थ—राठौड़ राज वीर अमरसिंह दिल्लीश्वर के सेनापतियों का अग्रसर, अपने वंश का दीपक और राजाओं की शोभा है। छत्र धारण किए हुए यह मालदेव के वंशजों का तिलक और रणमल के वंशजों का सिरमौर सा भासित होता है ॥ १ ॥

यह गजसिंह का पुत्र अपने उच्च आचरण से पृथ्वी पर सुशोभित है। युद्ध छिड़ने पर बलवान शत्रुओं को यह पीछे हटा देता है। संसार के बाहु रूपी वीर इसके विजयी हाथों की बन्दना करते रहते हैं। इसीलिए इसके विरुद विश्व-वंदनीय हैं ॥ २ ॥

यह सूरसिंह का वंशज सूरसिंह के समान प्रसिद्ध योद्धा, मस्तानी एवं समुद्र के समान अश्वारोही सेना की थाह लेने वाला है। आकाश को उठाने जैसी इसमें शक्ति है, इसका अभंगपन अथाह और असीम है। उच्च वीरों में यह श्रेष्ठ है। विशेष शत्रु-समूह में इसके शस्त्र रक्तपात कर देते हैं ॥ ३ ॥

इस नूतन चूंडा के जोश भरे यश के नक्कारे बजते रहते हैं। वीर समूह में यह जोधा का वंशज मस्ती से भरा हुआ शोभा पाता है। इस नरेश का मस्तक हिलते हुए चमरों और मेघाडम्बर (छोटा छत्र) से सुशोभित रहता है ॥ ४ ॥

राठौड़ अमरसिंह आसकरणोत (कूँपावत)

-: गीत २ :-

बलि भरियो परा त्रिमींगा बालै,
कलि चालै कालो कहर।
बासो बसै सु नह वैरी हरि,
ओरि सजै बाहर अमर ॥ १ ॥

कसियै जरदि मरद नवकोटौ,
चौरँगि चढियै प्रभत चड़ै ।
ऊभौ जां बांसै आसावत,
परिहँस सु नहँ पुराणि पड़ै ॥ २ ॥

कर ऊभियै महेस कलोधर,
सबला सूं सूत्रे समर ।
धख लागौ खैड़ै जां धूहड़,
हुवै न सुख घर वैर हर ॥ ३ ॥

जुध वालियौ किसन जोधपुरा,
निहसै वंसि चाढियौ नीर ।
जस देवल रचयौ सुजड़ी जड़ि,
वढि ढाहै देवल वणवीर ॥ ४ ॥

(रच०—अज्ञात)

अर्थः—हे वीर अमर ! तू बलशाली होकर अन्य भयानक वीरों को भगा देता है, युद्ध–क्रीड़ा करते समय वाधायें ला देने वाला सर्पसा दिखाई देता है । तू दूसरों की सहायता के लिए युद्ध में सजता रहता है। इसी कारण शत्रु अपने स्थानों पर नहीं बस पाते ॥

हे आशकर्ण के वंशज मरदाने वीर राठौड़ ! जब तू युद्ध के लिए कवच सजाता है, उस समय तेरा चौगुना संमान और विशेष प्रभुत्व स्थापित होता है। जब तू उनके पीछे पड़ जाता है, उस समय तो ईश्वर भी उनकी रक्षा नहीं कर पाता ।

हे महेशदास की कला को धारण करने वाले राठौड़ वीर ! हाथ उठाकर बलशाली शत्रुओं को युद्ध में समाप्त कर देता है और जिनके पीछे तू पड़ जाता है, वे शत्रु सुख की नींद नहीं ले पाते ।

हे राठौड़ वीर ! तूने किशनसिंह को युद्ध में समाप्त कर (या भगा कर) अपने वंश की कान्ति बढ़ा दी और कटारी मार कर देवालय रूपी (उन्नत) वनवीर को ढहा दिया (नष्ट कर दिया) तथा अपने देवालय रूपी यश की रचना की ।

राठौड़ अमरसिंह (बादनवाड़ा, अजमेर, के पुरुष)

—: गीत ३ :—

लोह विराजियां गज वोह लियंता,
मोह सुजस खटमांणी ।
सोहे तूझ तणे नवसँहसा,
सोहे मुख सामाणी ॥ १ ॥
हणिया उजबक बलख हींचता,
साराहे दल सारा ।
ऊदावत तूवाला ऊपर,
वणिया धार विहारां ॥ २ ॥
पाट धणी छत्रपति जोधपुरा,
घाट निराट घड़ाया ।
ऊजल वरण कुंदण मुख उपरां,
जोहर अमर जड़ाया ॥ ३ ॥

यसही ने खवांनी तणे मुँह ऊपरां,
दायिणे दसत 'रा तमाचा दीध ।
साह आगल़ कहे ऊवरां साहरां,
कमँध री हकीकत जाहरां कीध ॥ ३ ॥

इता कर खूंन दरगाह विच आवियो,
राह दहुवे सिरे नाम रहियो ।
कुसल़ सुत वाह वे—वाह हीमत करां,
किलमपत वाह वे—वाह कहियो ॥ ४ ॥

(रच०—कविया करणीदान)

अर्थः—तुजकमीर बादशाह से निवेदन करने लगा—जो अमर सिंह आप से सलाम कर रहा है, यह वही वीर है जिसने तारागढ़ (अजमेर) पर अधिकार किया, मुगलों को नष्ट किया और रणवाद्य के बजने पर (युद्ध में) बुरी तरह से भिड़ा । अतः इस पर कृपा दृष्टि करिये ।

कमरदी खान (वजीर कमरुद्दीन) ने भी बाशाह से प्रार्थना की कि यह (अमरसिंह) वही वीर है, जो झण्डा (पताका) फहराता हुआ लड़ने के लिये आया था एवं जिसने विजय दुन्दुभि बजवाई थी । अतः ऐसे राजवंशज को प्रसन्न रखना चाहिये ।

बादशाह के उमरावों ने भी राठौड़ वीर की चर्चा करते हुए कहा, कि खान के मुँह पर दाहिने हाथ से तमाचा (थप्पड़) मारने वाला यही योद्धा है ।

हे कुशलसिंह के पुत्र ! तेरे भुजबल को धन्य है क्योंकि जब तू (दुश्मन का) खून करके हिन्दू और यवनों से भरे हुए शाही दरबार में पहुँचा, तब वहाँ तू श्रेष्ठ माना गया और तेरी भुजाओं की बादशाह ने भी प्रशंसा की।

कुमार अभयसिंह

(महाराजा जोधपुर अजीतसिंह का उत्तराधिकारी)

—: गीत ५ :—

दिल्ली सूं झंडा हूआ दिठाळे,
थाह असामा कमण थँभे।
सहर वसायौ हुतो साहजां,
अणभँग धमरोळियो अभे ॥ १ ॥
असी कोस हूंता खड़ आयो,
गजण कलोधर कुँवर गुर।
लसकर मेले सहर लूटियो,
ग्रोह फाटां साहजां—पुर ॥ २ ॥
तण अजमाल हूंत डरपंती,
पतसाहां त्रिय चीत पड़ी।
वुगचा आलमाल कर वैठी,
खड़े पाय हुय तड़ाखड़ी ॥ ३ ॥

धरती मांहि मचाणो धूंखल,
किधर रखेगी माल कह।
बाप करे बेटा बोहतेरा,
बेटो खेटा करे वह ॥ ४ ॥
लाल को बिच माल लुकावे,
जवन जनाने जुई जुई।
मंजूसड़ी लीधां बगला में,
हुरम हुलक वानरी हुई ॥ ५ ॥

(रच०—अज्ञात)

अर्थ—जब अभयसिंह की सेना के फहराते हुए झण्डे दिल्लीश्वर को दिखाई दिये, तब उस अपार सैन्य समूह को रोकने का साहस किसी में नहीं दिखाई दिया। उस अभंगवीर (अभयसिंह) ने तो शाहजहां द्वारा बसाये गये नगर को तोड़ फोड़ ही दिया।

गजसिंह की कला को धारण करने वाले उस युवराज शिरोमणि (अभयसिंह) ने अस्सी कोस-दूरी से चल कर एवं सुबह होते २ सैन्य प्रयाण करा कर शाहजहांपुर[१] को लूट लिया।

अजीतसिंह के उस वीर पुत्र से डरती हुई मुगलबेगमें चौंक पड़ी और वस्त्र इत्यादि उठा कर पैदल ही चलने को उद्यत होगई।

यह देख कर कोई कहने लगा—'हे स्त्रियों ! तुम इस माल को छिपा कर कहां रखोगी ? देखती नहीं—चारों ओर युद्ध छिड़ा हुआ है।

---

१ टिप्पणीः—शाहजहां (बाद) पुर दिल्ली से मिला हुआ है। अजीतसिंह ने दिल्ली पर भी आक्रमण किया था। सम्भवतः कुमार अभयसिंह ने उसी समय वहां लूटमार मचाई हो।

वीर (अभयसिंह) का पिता (अजीतसिंह) जिस तरह विशेष संतति वाला कहा गया, उसी प्रकार यह वीर भी विशेष युद्ध कर्ता है।"

फिर भी वे यवन-स्त्रियां आदि जवाहरात एवं मालायें इधर उधर छिपाने लगीं और पेटियां बगल में उठाये उसांसें लेती हुई, भयभीत होकर इधर उधर झांकती हुईं बन्दरियों-सी दिखाई देने लगीं।

महाराजा अजीतसिंह (जोधपुर)

—: गीत ६ :—

अजा वाह हीमत तणा लीजिये उचारण,
राजरी बात दस देस रीधा।
कैद मक्त किया पतसाह झाले करां,
कैद था जिका पतसाह कीधा ॥ १ ॥
आंट चढ जोम वैरां लियण ऊफणें,
तैज कंज प्रवाड़ा वणे ताजा।
ए किया पकड़ सुलतांण जस आज रै,
रोकियां किया सुलतांण राजा ॥ २ ॥
लगस घर जोम वैरां लियण लूंबियो,
खेड़ारे खला मोटा विरद खाट।
बांहसूं ग्रेह हजरत दिया बेड़िया,
किता हजरत किया बेड़ियां काट ॥ ३ ॥
वाहजी वाह मुरधर तणा वाहरू,
जेरिया खाग डाले अजेरा।

ओल़ में भला आलम—पता आंणिया,
　　　किया आलम-पता ओल़ केरा ॥ ४ ॥
प्रथी कुमया मया तणी पूगी परख,
　　　नरांपत ऊनथां घणा नाथे ।
आलमां साह सिर छातर ऊथोलिया,
　　　मेलियां गरीबां तणे माथे ॥ ५ ॥
रीज बेसाणजे तखत एकां रिधू,
　　　तखत सूं खीज हेकां उतारै ।
दिली री पातसाही तणी बहादर,
　　　थाप ऊथप जिका हाथ थारै ॥ ६ ॥
(रच० अज्ञात)

अर्थः—हे अजीतसिंह ! आपके साहस को धन्य है। आपकी बात पर सब कोई प्रसन्न होते हैं। आपने कई बादशाहों को तो कैद मुक्त कर बादशाह बना दिया और कइयों को पकड़ कर कैद कर दिया।

हे महाराजा ! आप हठ पूर्वक प्रतिशोध लेने के लिये अपना प्रताप फैलाते रहते हो, जिससे आपकी ख्याति कमल के समान शोभा पाती है। जिस प्रकार आपने बादशाह को पकड़ कर यश प्राप्त किया उसी प्रकार बन्धन में पड़े हुए को बादशाह बना कर ख्याति प्राप्त की।

हे राठौड़ नरेश्वर ! आपने प्रतिशोध भावना से शत्रुओं के पीछे पड़ साभिमान महायश प्राप्त कर लिया। आपने हाथ पकड़ कर बादशाह के बेड़ियां डालदी और जो बन्धन-में थे उन्हें बन्धन मुक्त कर बादशाह बना दिया।

हे मरुधरा के रक्षक! आपने खड्गाघात करके श्रीमन्तों को बरबाद कर दिया। शाहों को तो आपने बन्धन में डाल दिया और जो बन्धन में थे, उन्हें मुक्त कर बादशाह बना दिया।

हे नरेश्वर! संसार, आपकी सुदृष्टि एवं कुदृष्टि का परिचय पा चुका। क्योंकि आपने नहीं नथने योग्य (अवश) को नाथ दिया है (काबू में कर लिया है)। आपने बादशाह के मस्तक से छत्र उतार कर गरीबों के मस्तक पर रख दिया।

हे वीर! आप प्रसन्न होकर एक को तख्त पर बिठा देते हैं और रुष्ट होकर दूसरे को तख्त से उतार देते हैं। इस लिये कहना पड़ता है कि दिल्ली की बादशाहत पर किसी को स्थापित अथवा उससे च्युत करदेना आप ही के हाथों में है।

राठौड़ नरेश अजीतसिंह (जोधपुर)

—: गीत ७ —

नरां पियारी पियारी सुरां आसुरां पियारी नागां,
प्यारी रिखां जखां गणां गंध्रवां प्रवीत।
धूतारी कुंआरी नारी सदारी ठगारी धरा,
तिका तांम्रापत्रां पातां समापी अजीत॥ १॥
दाढ धारी वाराह भ्रुगुट्ट धारी सेख देवा,
दूही राजा प्रथू कामधेनू ज्यूं दुम्हाल।
मानधाता ऊपड़ी न हाथां वेण धुंधमार,
मेदनी सुपातां तिका त्रवी दूजै माल॥ २॥
कैरवां न मांगी दीधी पांडवां ढिली, कीधी,
चापड़े भिड़ाया जे दिखाया चाला चीत।

रेणा कंस खपायो थपायो उग्रसेण राजा,
जिका रेण रीज देणो जसारो अजीत ॥ ३ ॥
त्रिलोकरे नाथ हाथ ओडली धरती तिका,
पाचियां धरतीं थियो वेराट रे स्रूप ।
केकई छुडायो राम धरती भरत काज,
(इला तिका पातवां दी अजमाल भूप) ॥ ४ ॥
राजा वली राजा अवतारां में परसराम,
अवतरे जोधा घरे आजौ तीजी उचार ।
और चोथो आगाहटां पातां देणहार एहो,
देवां नरां नागां निको अवन्नी दातार ॥ ५ ॥

(रच०—द्वारिकादास दधवाड़िया)

अर्थः—हे अजीतसिंह ! नर, असुर, सुर, नाग, ऋषि, यक्ष, गण और गन्धर्वों तक को प्यारी लगने वाली एवं पवित्र कौमारी पृथ्वी, जो बड़ी धूर्त और ठगिनी है, को तू ताम्रपत्र (सनदें) लिख कर कवियों को दान में देता है ।

हे दूसरे ही मालदेव ! जिस पृथ्वी को वाराह ने दाढ़ पर और शेप नाग ने मस्तक पर धारण किया, राजा पृथु ने जिसे बुरी तरह धेनु रूप में दुहा, मान्धाता, वेणु, धुंधुमार जिसे नहीं उठा सके, उसे तूने कवियों को दान में दे दिया ।

हे जसवन्तसिंह के पुत्र अजीतसिंह ! जिस दिल्ली (इन्द्रप्रस्त) को पाण्डवों ने बसाया, फिर भी कौरवों ने पाण्डवों को भू-भाग नहीं दिया, दोनों पक्ष खुले मैदान में जुट पड़े और इच्छा-पूर्वक

युद्ध किया। इसी पृथ्वी के लिए कंस मारा गया और उग्रसेन पुनः राज्य पर स्थापित हुआ। उस पृथ्वी को कवियों के लिए दान देने वाला तू ही है।

विराट रूप त्रिलोक पति पृथ्वी के लिए हाथ फैलाने के कारण वामन रूप हुए। अपने पुत्र भरत को पृथ्वी दिलाने के कारण कैकेयी ने राम को वनवास दिया। (हे अजीतसिंह) ऐसी उस पृथ्वी को कवियों को दान में देता है।

हे नरेश्वर! तेरे जैसा या तो वली राजा या अवतार धारी परशुराम (जिसने पृथ्वी को क्षत्रिय रहित कर राजाओं का भू-भाग ब्राह्मणों को दिया) ही हुआ, तीसरा जोधा के वंश में तू हुआ। तेरे समान चौथा उदार पीढ़ियों तक उपभोग में आने वाली भूमि दान में देने वाला न तो देवताओं में, मनुष्यों और नागों में ही हुआ है।

राठोड़ अर्जुनसिंह (गोपालदासोत, ऊहड़)

—: गीत ८ :—

पह चाड देश छल भीर पलटती,
कुलवट ते पूछियौ किसौ।
इहतौ जिसौ जनम लग ऊहड़,
उरजन भ्रित सांपनौ इसौ॥ १॥
धरियै अधरणि आप तण धृहड़,
मिलियौ सारे निभै मन।

निहसै खसै ऊससै निग्रहि,
वंछतौ ताइ जूड़ियो विघन ॥ २ ॥
पाल तणौ अजुवालण परियां,
घट त्रूटै आवाहै घाव ।
मिलियौ दिनि धवलै राउ मारू,
पह प्रीणतौ तिसौ परिजात ॥ ३ ॥
जिम जैमाल अभिनमौ जैमल,
हालियै दलिदल थंभ हुवौ ।
कोढणौ जल चाढै नव कौटै,
मोटे प्रवि सांपनै मुवौ ॥ ४ ॥

(रच०—अज्ञात

अर्थः-सैन्य समूह के पलटने पर देश-रक्षा के लिये राजा ने ज
चढ़ाई की, तब वंश स्वभाव के अनुसार क्या पूछना था। हे ऊहड़वंशी
अर्जुनसिंह ! जन्म से ही जैसी तेरी रुचि थी वैसी ही मृत्यु तूने जोश
में आकर (युद्ध में) प्राप्त की।

हे धूहड़ (राठौड़)! तूने (अपनी भुजाओं पर) युद्ध भार
ग्रहण कर निर्भयता पूर्वक तलवारों से तलवार मिलाई एवं शत्रुओं से
संघर्ष करता हुआ तू नष्ट हुआ। (वास्तव में) मृत्यु के लिये जैसा
विघ्न प्रद समय तुझे चाहिये था, वैसा ही मिला।

हे पाला (गोपालदास) के पुत्र राठौड़ ! अपने पूर्वजों की ख्याति
को उज्वल (पवित्र) सिद्ध करने के लिये तू शरीर के टुकड़े २ हो जाने

पर भी शस्त्राघात करता रहा। (वास्तव में जैसा तूने चाहा था वैसा ही तुझे मृत्यु का सुदिन प्राप्त हुआ।

हे नूतन जयमल ! दिल्ली की सेना जब (युद्ध में) बढ़ी, तब तू स्तंभ स्वरूप (अडिग) हो गया और मरुदेश, जो कान्ति हीन होने वाला था, उसे कांतियुक्त करते हुए, अच्छे दिन में तूने मृत्यु प्राप्त की।

राठौड़ ईसरदास (कल्याण दासोत)

—: गीत ६ :—

मिलै औछवै भेछक वधे वीर हाक डाक वजि,
पेखै रंभरथ ढोया वरमाल पांणि।
आवजै अयार वार वीसमी नीसांण वाजै,
ईसरा अभंग नाथ ऊपरा आरांणि ॥ १ ॥
पड़े सार भार पूर आहुड़ै है थाह एकां,
मिलै सुरां ताल काल कौतिग मै कांम।
त्रह त्रहै तूर आगि ऊछलै भिलै अयासि,
सोहे कलाऊत माथै एकडौ संग्राम ॥ २ ॥
धड़धड़ै धोम सूर वढ़वड़ै चड़े धारि,
हड़हड़ै रंभ वाहै वरमाल हाथि।
भड़ां गजां भांजै भूरौ वीरियौ वीराध वीर,
भलौ भलौ भाखै भांण भिड़ंते भाराथि ॥ ३ ॥
धाराले निजोड़ि घड़ां पड़े सूरां खंति पूरि,
जोध जुध जैतवंत हुवे पिता जेम।

अवरी वरेअ सग राठोड़ आरोहे रथे,
अभिनमौ रायांमाल जोति मिले एम ॥ ४ ॥

(रच०—अज्ञात)

अर्थ:—अभंग वीर ईश्वरदास पर जब विषम रूप से (भीषण) नक्कारे बजवाते हुए शत्रु चढ़ आये और वार होने लगे, तब वह वीर (ईश्वरदास) युद्धोत्सव मनाता हुआ भिड़ गया जिससे वीर-हुँकार होने लगी, नक्कारों पर डंके पड़ने लगे एवं वरमालायें लेकर अप्सरायें विमानों को युद्ध की ओर बढ़ाने लगीं।

जब अकेले उस कल्ला के पुत्र (या वंशज) पर समूचे युद्ध का भार आ पड़ा, तब उसके द्वारा युद्ध छिड़ते ही अपार शस्त्र-झड़ी होने लगी, अश्वारोहि वीर जुटने लगे, युद्ध देखने के लिये देवता एकत्रित होने लगे, एवं ताली बजाता हुआ स्वयं यमराज मृत्यु का खेल रचने लगा। साथ ही तुरही बजने लगी तथा वीर उछल २ कर आकाश को छूने लगे।

युद्ध-भूमि धड़धड़ाने लगी गर्जना करते हुए वीर खड्गधाराओं का सामना करने लगे, हँसती हुई अप्सराये वरमाला वीरों के गले में डालने लगीं। इस प्रकार वीर-शिरोमणि युवक वीर (ईश्वरदास) योद्धाओं एवं हाथियों को नष्ट करने लगा, जिसे देखकर सूर्य भी उसकी प्रशंसा करने लगा।

उस जोधा के वंशज जो दूसरे ही रायमल तुल्य था, ने तलवार से तलवार मिलाकर युद्ध क्षेत्र को शवों से पाट दिया (इस प्रकार) वह राठोड़ वीर अपने पिता के सदृश विजयी कहाता हुआ कुमारी अप्सरा के साथ विमान में बैठ कर ईश्वर की ज्योति में जा मिला।

राठौड़ ईश्वरदास (कल्याण दासौत तथा रायमलोत)

—: गीत १० :—

वैर विभाड़िजै वड मौजां ग्रविजै,
कुल उद्योत कहावे।
ईसर वडिम तूझ ईखंतां,
इनि पह मीढ न आवै ॥ १ ॥
सवलां खलां नामिजै समहरि,
कवि सवलां दन कीजै।
कुल अजुवाल गंगेव कलोधर,
दूइजा मीढ न दीजै ॥ २ ॥
पूजण रेण चाचर निज पांणे,
वड हथ आंकण वारां।
समवड़ तूझ कल्याण समोभ्रम,
केम हुवे अनिकारां ॥ ३ ॥
भुज पूजै पतसाह महा भड़,
गुण नवखंडे गाए।
खिति मांणै महवति खेडेचा,
पैं खत्र खाग पसाए ॥ ४ ॥

(रच०–अज्ञात)

अर्थः—हे ईश्वरदास ! तू शत्रुओं का नाशक और विशेष दानी है, इसीलिए तू वंश का सूर्य कहा जाता है। तुझे देखते हुए दूसरे राजा तेरी समता नहीं कर सकते।

हे गांगा की कला को धारण करने और कुल को उज्वल करने वाले वीर ! तू युद्ध में बलवान शत्रुओं को झुका देता और दान देकर कवियों को भाग्यशाली बना देता है। यह देखते हुए अन्य नरेश तेरी तुलना नही कर सकते।

हे कल्याणदास की भ्रान्ति देने वाले वीर ! तू अपने हाथों से कवियों की पूजा कर उनके मस्तक पर तिलक किया करता है, मानो तू अपने लम्बे हाथों से उन्हें आँकता (अंकित सा कर देता है)। अतः अन्य कृपाण धारी तेरी समता किस प्रकार कर सकते हैं।

हे महान वीर खेड़ेचा (राठौड़) ! तेरी भुजाओं की बादशाह भी पूजा करता है। नवों खण्डों में तेरा गुण गान होता रहता है और तू क्षत्रियत्व के साथ तलवार के बलपर प्रेम पूर्वक पृथ्वी का उपभोग करता रहता है।

चांदावत राठौड़ उदयसिंह, नरसिंह और लखधीर

—: गीत ११ :—

उदेसिंघ नरसिंघ लखधीर खड़े आवतां,
बींद बणिया त्रहूँ नगरा वावतां।
रेवतां वोरतां वाहतां रावतां,
चाढिशी मेड़ते नीर चांदावतां ॥ १ ॥
नेट तोपां धग्र थरर त्रहुँवो वला,
झाट पड़ केमरां साट भरलक झलां।
खाट खड़ ढालढां टूक ऊछल खला,
वाज गरकाव कीधा समर वांघलां ॥ २ ॥

धज बिलँद बोरिया स्यामध्रम धारियां,
कूरमां तणा दल बीच अहँकारियां।
बाहतां साहतां बोसरा बारियां,
अखाड़ बुडायो सूर तरवारियां ॥ ३ ॥
गाघरे पाखरां फाटि पड़िया गरे,
केमरां कंचवा जरद टुकड़ा करे।
बोढणी झिलम रूकां झपट बूतरे,
बीदणी कूरमां तणी कमधां वरे ॥ ४ ॥
जेहड़ी टकोरा ट्रक पाड़ जुवा,
चूड़ि कट हाथलां धार श्रोणी चुवा।
दुधारा कटारां पहड़े गहणा दुवा,
हेत करि पोढ़िया लत्थ बाथे हुवा ॥ ५ ॥
बिजारा भावसी तणा बाखाणिया,
जोसरा बीटिया च्यार चक जांणिया।
तिलक कर निलाटा अपछरा ताणिया,
बरोवर बिमाणा बीच बेठाणिया ॥ ६ ॥

(रच०---अज्ञात)

अर्थः—शत्रुओं को आते हुए देखकर उदयसिंह, नरसिंह एवं लखधीर नामक तीनों चांदावत राठौड़ों ने युद्धार्थ नक्कारे बजवाये तथा दुलहे बनकर (युद्ध में) घोड़ों को बढ़ाते हुए रावत-पदधारी वीरों को काट २ कर फेंकने लगे। (इस प्रकार उन्होंने मेड़ते दुर्ग को कांति-युक्त कर दिया।

जब सिंह-सदृश वीरों ने युद्ध में घोड़े बढ़ाये तब तोपों की गड़गड़ाहट से चारों ओर की पृथ्वी फट कर नीचे की ओर धसने लगी, धनुष से बाण छूटने लगे और टकरा २ कर ज्वालायें छाने लगी तथा खड़खड़ाती हुई दुश्मनों की ढालें टूक २ होने लगी।

स्वामी धर्म परायण वे वीर अपने ऊर्ध्वकाय घोड़ों को कछवाही सेना पर साभिमान बढ़ाने लगे और धनुष को खींच २ कर बाण-वर्षा करते हुए, खड्ग-प्रहारों से युद्ध भूमि में चिनगारियां बिखेरने लगे।

लहँगे रूपी पाखरे फटकर गले में पड़ गई, बाणों द्वारा कंचुकी रूपी कवच के टुकड़े २ होगये, तलवारों के प्रहारों से साड़ीरूपी शिरस्त्राण खिसक पडे। इस प्रकार उन राठौड़ वीरों ने कछवाही सेना रूपी दुलहिन का वरण (काबू में) किया।

धनुष-टंकार ही युद्ध में जेहरी (नूपुर आदि का) शब्द बन गई, रक्तरंजित हाथ चूड़ियों से; सुशोभित (मेंहदी-रँगे) हाथ बनगये, दूधारी तलवारों एवं कटारियों के घाव अंग-भूषण बन गये। ऐसी दुलहिन रूपी सेना के साथ वे (राठौड़) वीर गले में हाथ डालकर रणशय्या पर सो गये।

(इस प्रकार) उन बीजा एवं भावसिंह के (राठौड़) वीरों का यशगान होने लगा. जोश से भरे हुए उनवीरों की प्रसिद्धि संसार में फैल गई और अप्सरायें उनके ललाट पर तिलक कर एवं अपने२ विमानों में बिठलाकर उन्हें स्वर्ग को ले चली।

राठौड़ कूंपा (जयमलोत, बालावत)

—: गीत १२ :—

वडा सूर सुदतार वडवार विरदां वहण,
मेलवण ताल कलि चाल मारू ।
कुल तिलक तूझ सरिखा सुहड़ कूंपकन,
सदा लग अरवियां वडिम सारू ॥ १ ॥

सुहायड़ दलां दल सुहारि दन मंडयण,
धार सर आवरण खत्र धौड़ ।
उजलां कमल वीदाहरा अतुलबल,
मांनिजै तुजिसा न्याय कुल मौड़ ॥ २ ॥

सार सफरि म वधै कीध जग साखियो,
भिड़णि अरि थाट जै नाट भाजै ।
सुभट पै जेवहा सदा आखाड सिव,
कमँध भुज पूजिजै अचड़ काजै ॥ ३ ॥

पाणि खत्रवट जतू मलो चढियो प्रमति,
धरा रखपाल रणतालि दल धीर ।
वंस रा तिलक जैमाल रा वीर वर,
निवड़ मड़ निवे आया रहै नीर ॥ ४ ॥

(रच०—अज्ञात)

अर्थः—हे राठौड़ वीर कूंपा ! तू बड़ा शूर वीर और दानी है। वस्तुतः तेरे विरुद भी बड़े हैं। युद्धकर्त्ताओं की पंक्तिबद्ध सेना से

एक तू ही हाथ मिलाने वाला है। हे कुल-तिलक योद्धा! तुझ से योद्धाओं के कारण ही पूर्व पुरुष (पुरुपा) वंदनीय हैं।

हे वीदा के वंशज (या पौत्र)! सामना होने पर तू सूर्य-सदृश (प्रचण्ड) होकर हरावल में बढ़ता हुआ एवं तलवार द्वारा विपत्ति-वीरों से लड़ता हुआ अपने पवित्र धूहड़ वंश-क्षत्रियत्व का पालन करता रहता है, जिससे तेरा मुख निष्कलंक दिखाई देता है। इसलिये तुझे 'वंश का सिरमौड़' कहा जाना उचित है।

हे रणदक्ष राठौड़ वीर! (युद्ध में) जब शस्त्राघात होने लगते हैं, तब तू पीठ नहीं दिखाता है, (प्रत्युत) आगे बढ़ता ही रहता है। इस बात का साक्षी समस्त संसार है। (वास्तव में) तेरे भिड़ने पर शत्रु-समूह भाग जाता है और आपत्ति के समय तुझ जैसे वीरों के बाहु ही पूजे जाते है।

हे जयमाल के पुत्र (या वंशज)! तू कुल का तिलक एवं श्रेष्ठ वीर है। तूने अपनी भुजाओं पर क्षात्र वट की शोभा भली भाँति धारण कर रखी है। हे धीर वीर! तू धरा-रक्षक एवं सेना में अविराम शस्त्रा-घात करने वाला है। युद्ध भूमि में तेरे प्रवेश करने पर दुश्मन झुक जाते तथा समाप्त हो जाते हैं। युद्ध में तेरे सम्मिलित होने पर ही वीरों की मुख कांति बनी रहती है।

ठाकुर केशरीसिंह राठौड़ (रायपुर)

—: गीत १३ :—

मेस ईस वंस[1] जेहगी एराक भू वेपखां सूरा,
मेभा पूर तता गे तेहरी वड़ा मोड़।

---

१ टिप्पणी:— वंशभास्कर एवं डिंगल कोश के अनुसार 'सूत (लोमहर्षण)' राजा-पृथु के यज्ञ-समय उत्पन्न हुआ, जिसे कच्छ देश दिया गया। उसकी शादी कुन्दमल नागकी पुत्री 'अवगी' से हुई। शिवके वरदान से उसके 'उग्रश्रवा' नामक पुत्र हुआ जिससे चारणों की १२० शाखायें प्रादुर्भूत हुई।

रूपगां पै घाव तीठ देहरी न रखे रोला,
रेणुवां है भड़ां एहां केहरी राठोड़ ॥१॥

चारू बांणी पाणीपंथा मोड़णा केवीयां चमू,
ग्रंथा-सिध चल थांभा तोड़णा गयंद।
आखरेस तेज में जीपणा जंगां रखे एहां,
नीपणा ब्रहासां पहां भाखरेस नंद ॥२॥

जावां अगां परोकी अरेहां परां छठी जागे,
खूम देव ऐराकी अछेहां स्त्ररां खांण।
दखां गुणां ढेहां किलां स्याम काज भंजे देहा,
भांणु तुरां भीच ऐहां रखे ऊदा भाण ॥३॥

रचा ग्रंथां ऊगतां, तरंतां आचा पाथ रूपी,
वाचा त्रार पेना चाँपरीये जंगां बाघ।
आचां क्रन्नू परघे सुपातां तूरां भड़ां आछा,
अरघे न काचा मारू सांचां करे आघ ॥४॥

(रच०-दधवाड़िया पोखरराम)

अर्थः—शेपनाग् एवं शिवद्वारा समुत्पन्न (चारण) वंश के बुद्धिमान् तथा पद्यरचना करने वाले (कविया) को वेगवान एवं चंचल तथा खूंदते रहने वाले घोड़ा को तथा मातृपितृ पक्ष से वीर एव तीन २ घेरा दी हुई पक्तिवद्ध गज-सेना को भगा देने वाला तथा युद्ध में शरीर की परवाह न करने वाले योद्धाओं को राठौड़ केशरीसिंह (अपने यहाॅ) रखता है।

श्रेष्ठ वाणी वाले एवं ग्रन्थों के ज्ञाता तथा अच्छे अक्षरों से रचना करने वाले कवि, पानी को तैरकर पार करने वाले चंचल एवं तेज (आशुगामी) घोड़ों और शत्रु-सेना को परास्त करने वाले एवं युद्ध में स्तम्भ की तरह अडिग हाथिया को नष्ट करने वाले तथा विजय पाने वाले राजवंशी क्षत्रिय,, भाखरसिंह के पुत्र के यहाँ रहते हैं ।

प्रश्न का उत्तर शीघ्र देने वाले, (कविता की मस्ती में) मस्त रहने वाले एवं गुणदक्ष कवियों को, हरिण एव पक्षधारियों के समान कहे जाने वाले तथा देव अंशी एवं टक्कर से दुर्गों को ढ़हा देने वाले घोड़ों को और दूसरों के हित युद्धार्थ तत्पर रहने वाले असख्य वीरों को नष्ट करने वाले तथा स्वामिहित खून वहाने वाले भयानक योद्धाओं को, उदावत राठौड़ों का सूर्य (केशरीसिंह) अपने पास रखता है ।

उक्ति पूर्वक ग्रन्थ रचना करने वाले एवं वचन रूपी पेने वाणों से वार करने वाले कवियों का, (रण-सिन्धु को) तैर जाने वाले चंचल घोड़ों का और अर्जुन के समान धनुर्धारी तथा युद्ध-समय में सिंह-सदृश साहसी वीरों का, अपने हाथों से पोषण करता हुआ राठौड़ वीर (केशरीसिंह) सम्मान करता रहता है । इसके यहाँ अयोग्य सम्मानित नहीं होते ।

राठौड़ कर्णसिंह, साहिब खान और अखैसिंह (चांपावत)

—: गीत १४ :—

दल मिलिया सबल भटकियो दमँगल,
खग वाजे लूंबिया खल ।
जुध पैठा चांपा चाढै जल,
वहसे कमधज सहस बल ॥१॥

चाहै अछर धारियां चौसर,
सुर संकर जोवै समर।
करन, साहिब, अखई, वाहै कर,
भोपतिकां थोभियां भर ॥२॥

रिणि सबदी अईं भुज रिणिमल,
मुह रावत त्रिद आप मल।
हाले हमल नेट है हींसल,
पाल — हरा जूटै अपल ॥३॥

पित पौत्र पितामह पाधरि,
म्रित देवल ऊतरिया मरि मरि।
पोत्रे धज चाढीतां ऊपरि,
सुजि हरि जोति समाणा समहरि ॥४॥

(रच०—अज्ञात)

अर्थः—जब सबल सेनाओं के भिड़जाने पर युद्ध छिड़गया, खड्गाघात करते हुए शत्रु उलट पड़े. तब हजारों गुना अधिक बल प्रदर्शित करते हुए अपने वंश को उज्वल करने के लिये चांपावत राठौड़, युद्ध में उतरे

जब कर्णसी, साहिब खान और अखयसिंह ने कराघात कर शत्रुओं को रोक दिया, तब (वरण की) इच्छा करती हुई अप्सराओं ने हाथों में मालायें उठालीं, एवं देवता और शंकर युद्ध देखनेलगे।

रणमल के समान पाला के वंशज जो अतुलनीय वीर एवं रावत पदधारियों के मुखिया थे, जब (युद्ध में) हुंकार करते हुए भिड़गये, तब

समस्त वीर ठिठक गये और अकेले जाने पर भी घोड़े कठिनाई से आगे बढ़ने लगे।

पूर्वजों के समान ही पिता और पितामह ने मर कर (यश) मन्दिर की रचना और पौत्र ने मरकर उस (यश-मन्दिर) पर ध्वजा फहरादी। इस प्रकार तीनों (पिता पितामह और पौत्र) ईश्वर की ज्योति में लीन होगये।

राठौड़ किसनसिंह

—: गीत १५ :—

सजे साकुरां पाखरां नरां कामरा करारां साथे,
वाजतां नगारां बधे वीरां घमे वीर।
मारकां हजारां सीस धावियो अठेल मारू,
सूर रो आखरां वेल आवियो सधीर ॥१॥

विवाण अच्छरां सोक वाजी हाक डाक वीरां,
वींटियो सधीरां घणा धारिया विसन।
पाणी अड़े पाछरे कुबाण बांणा रीठ पड़े,
केवाण कुबाण वागो जुवांणां किसन ॥२॥

कोरड़ा लोहडा तूटे बिछूटे छक्कड़ा कड़ा,
नीधकां नीवाड़ा भड़ां हाकले नरीठ।
ग्रध ओजड़ां झड़ां धजवड़ां भांजि घड़ा,
राठोड़ां ओनाड़ां लागो वागो विने रीठ ॥३॥

भभक्के नगारां नाळां गड़क्के अग्राजा भोम,
फड़क्के फीफरां आंण अड़क्के फूणाळ।
धड़क्के कायरां नरां बड़क्के सनाह धारां,
लड़क्के चाचरां सूरां कड़क्के लंकाळ॥४॥

गेमरां हैमरां नरां पाड़ि गाड़ि दीध गरा,
दूसरा केहरी खिले खेचरां दुबाह।
सो सरा खत्रणां करां तुरा परा फूटै सेल,
ऊपरा अच्छरां करै सिरक्खरा उछाह॥५॥

कंडां मव्वकंडां करे नवेखंडां नाम राखे,
अफाले विरंडां गुणां कोमंडा अग्राज।
चापड़ै उडंडां भंडा मुडंडां पराई चाडां,
वीच जाडां थंडां रहै आडा खंडां वाज॥६॥

सामंतां पाखती लीधां राठौड़ सहत्तो सती,
देखे पारखत्तो करै आरत्तो प्रसंन।
सकत्तो रैणाड़ै थाण भारत्तो विभाड़ै सत्रां,
कीरत्तो ह्वाड़ै मिलै सुकत्तो कसंन॥७॥

(रच०—अज्ञात)

अर्थः—सूरसिंह के पुत्र वीर राठौड़ ने घोड़ों एवं साथियों को सजाकर कराने (भयंकर) शत्रु कायरों — पर नक्कारे बजवाये और (रणक्षेत्र) में, आगे बढ़कर उन्हें संतप्त कर दिया। (इस प्रकार) वीरवीर वह अड़ाकू योद्धा, हजारों हत्यारे वीरों पर आक्रमण कर अन्त में स्वपक्ष—वीरों का सहायक बना।

वीर किशनसिंह के खड्गाघात एवं शराघात शुरू होने पर अप्सराओं के विमानों की आवाज होने लगी, उछलकूद करते हुए विरों की हुँकार होने लगी, विष्णु (भगवान) का स्मरण कर बहुत से साथी वीर उसके आसपास होगये और अड़ाकू पक्ष कै वीरों (विपक्षियों) पर कमानों से तीरों की झड़ी करने लगे।

जब राठौड़ों एवं अनम्र शत्रुओं में लगातार शस्त्रवर्षा होने लगी, तब हाथों में लिये हुए चाबुक एवं शस्त्र टूटने लगे, उत्साह में छके हुए वीरों के कवच की कड़ियां टूटने लगी, शत्रुओं से निधड़क निपटते हुए वीर ललकारने लगे एवं भयानक खड्गाघातों से सेना विनष्ट होने लगी।

सिंह सदृश वीर किशनसिंह ने जब ललकार की तब तोपों तथा तुपकों से अग्नि-ज्वाला फैलने लगी एवं उनकी गर्जना से पृथ्वी प्रतिध्वनित होने लगी, फेफड़े फड़ फड़ाने लगे, पृथ्वी शेषनाग के फणों से जा टकराई, कायर कांपने लगे, खड्गाघातों से बख्तर टूटने लगे तथा वीरा के मस्तक कट २ कर लुढ़कने लगे।

दूसरेही केशरीसिंह तुल्य वीर (किशनसिंह) ने (युद्ध में) अपने दोनों हाथों को चलाकर आकाश मार्ग पर चलने वाले देवता आदि को प्रसन्न कर दिया, एवं हाथी-घोड़ों तथा शत्रुवीरों को काट कर युद्ध भूमि को पाट दिया। जब बाण, खंजर एवं भाले वीरों के हृदय को विदीर्ण करने लगे, तब यह देखकर अप्सरायें विवाह संबंधी भोज्योत्सव की तैयारी करने लगी।

अन्य की सहायता के लिये चढाई करने वाले उस वीर (किशनसिंह) ने शत्रुओं के शरीर क्षत विक्षत कर नव खंड भू तल पर अपना नाम अमर दिया। उसने धनुष की टंकार करतें हुए हाथियों को घायल

कर लड़खड़ाते कर दिये (इस प्रकार) वह अपने बाहुबल से खुले मैदान में पताकायें फहराता हुआ सैन्य समूह में प्रवेश कर खड्गाघातों से धराशायी हो गया।

अपने साथियों एवं सहगामिनी के सहित जब वह वीर कैलाश में पहुँचा, तब प्रसन्न होती हुई पार्वती ने उसकी आरती उतारी। (इस प्रकार) उसने वीरतापूर्वक शत्रुओं का नाश कर रणचंडी को शोणित से तृप्त कर दिया। वह वीर किशनसिंह कीर्ति को यहीं छोड़ मुक्ति को प्राप्त कर गया।

राठोड़ कला (रायमलोत)

—: गीत १६ :—

बल चढ बोलियाँ पतसाह बदीतो,
माण मंडोवर गाल मलीतो।
कलो भलो रजपूत कहीनो,
जिण अवतार लगै जस जीतो॥ १॥

प्रथम दल आरँभ पतसाहे
साह दरीखँम बीड़ो साहे।
बदिया वयण जिके निरवाहे,
गढ सिवियांण कलो पड़ गाहे॥ २॥

थल गढ गरट तलहटी थांणो,
राव अग्राज करे रीसांणो।
कड़वा वयण कहे कलियाणो,
सिर पड़िये देसूं सिवियांणो॥ ३॥

वे माझी वे तखत वडाल़े,
विहद हुआ वे वेध विचाल़े।
ऊदा राव दुरंग ऊधाले,
रायमलोत दुरग रखवाले ॥ ४ ॥

जिम रावल़ दूदो जेसांणे,
निहसे चूंड राव नागांणे।
सातल सोम मुआ सिवियाणे,
कीनो मरण जिसो कलियाणे ॥ ५ ॥

पावेगढ़ जूझार पताई,
सक जैमल चीतोड़ सवाई।
लाखवटा सिर मांड लड़ाई,
वाघ हरो लड़ियो वरदाई ॥ ६ ॥

धरपत कान्ह रटे जालंधर,
थाट विडार हमीर रणथंभर।
अंग तिण लाज अणखला ऊपर,
कलियो जूझ मूओ गज केहर ॥ ७ ॥

अचल़ तिलोको सींगण आगे,
जुध जोधपुर मुआ छल जागे।
लाज तिकां सिर अंवर लागे,
खेड़ नरेश्वर विढियो खागे ॥ ८ ॥

हाथी सहर भांण हाथाल़ो,
कान मागरण माझी काल़ो।

आधू सजन मुवो अड़सालो,
सुणियो जेम कलो सु पखालो ॥ ९ ॥

विढ भोजराज मुओ वीकांणे,
पाट उरजण जेम प्रमांणे।
वरसलपुर खां माल वखांणे,
साको जेम कला सिवियांणे ॥१०॥

न रहो महियल पाल निरोहे,
सोहियौ सोम मंडोवर सोहे।
लोद्रवे भांण मुओ चढलोहे,
सिर सिवियांण कला भ्रत सोहे ॥११॥

भूपतसींघ जिसां भूपालां,
मांच गहां चढ ऊपर मालां।
राव आव कहतो रखतालां,
कलक्रन रहे मुहे करमालां ॥१२॥

खूजा हरो ऊँचियँ सावल,
चावो मुओ अणखल निह वल।
दीठे काल कोपिये अरिदल,
चढिया गिरे जूजुआ चल चल ॥१३॥

मरण कला मंडोवर मावे,
चावो गवां घोल चढावे।

रवि सस हर लग नाम रहावे,
इन्द्र सभा मझ बेठो आवे ॥१४॥

(रच० राठौड़ पृथ्वीराज, बीकानेर)

अर्थ:—वीर कल्ला श्रेष्ठ क्षत्रिय कहे जाने योग्य था। (सचमुच) उसका जन्म विजय प्राप्त कर यश-प्राप्ति के लिये ही हुआ। अपने बल पर उसने बादशाह को प्रत्युत्तर देते हुए कहा, कि मैं युद्ध में मँडोवर राजवंश की इज्जत बनायी रखूंगा।

सैन्य प्रयाण से पूर्व ही वीर कल्ला ने शाही दरबार में युद्धार्थ प्रतिज्ञा कर तांबूल (बीड़) उठा लिया और अपने वचन को निभाता हुआ, सिवाने के दुर्ग पर लड़ता हुआ धराशायी हो गया।

सिवाने दुर्ग के नीचे घेरा डाल कर क्रुद्ध जोधपुर नरेश ने थान नियुक्त कर दिया और गर्जना की। यह देखकर वीर कल्ला ने कटु-वचनों में कहा, कि मेरा मस्तक कटने पर ही तुम लोग सिवाना दुर्ग प्राप्त कर सकोगे।

जब दोनों बड़े २ तख्तों (दिल्ली एवं जोधपुर) के स्वामियों तथा उनके प्रमुख वीरों ने मिल कर अपार युद्ध छेड़ दिया, तब (शाही बल पर) मरुनरेश ऊदा (उदयसिंह), सिवाना दुर्ग को खो देना चाहता था; परन्तु रायमलोत (रायमल का वंशज) वह वीर कल्ला उस दुर्ग का रक्षक बन गया (जीतेजी दुर्ग को हाथों से नहीं जाने दिया)।

जिस प्रकार जैसलमेर पर रावल दूदा, नागौर पर चौंडा, इस सिवाने दुर्ग पर सातल और साम--

पावागढ़ पर पता, चित्तौड़ दुर्ग पर जयमल लाखोटा की बारी (चित्तौड़ दुर्ग स्थित एक स्थान) पर वाघा का यश धारी पौत्र (या वंशज)—

जालंधर (जालौर) पर नरेश्वर कान्हड़दे, रणथंभोर पर शत्रु-समूह का नाशक हम्मीर—

जोधपुर के रक्षार्थ अचला, तलोखा एवं सींगण नामक वीर—

हाथी शहर पर महाबाहु (अथवा 'हाथाला' प्रान्त, सिरोही का) भाण, गागरोन पर प्रमत्त वीरों का मुखिया कान्हा, आबू पर अड़सी का पुत्र (या अड़ाकू वीर)—

बीकानेर पर अर्जुनसिंह के सिंहासन को सुशोभित करने वाला भोजराज, वरसलपुर (मारवाड़) पर खेमा—

महियल (मेवल, मेवात या अलवर प्रान्त) पर नरू (नरूके कछवाहों का पुरखा), मंडोवर पर सोम, लोद्रवा पर भाण तथा—

मांचैड़ी (मेवात) स्थान के 'ऊपरमाल' प्रांत पर चढ़ाई कर युद्ध करते हुए नरेश-शिरोमणि भूपतसिंह मारे गये, उसी प्रकार—

सूजा का पौत्र (या वंशज) वीर कल्ला जो शत्रुरूपी हाथियो के लिये सिंह स्वरूप एवं कर्ण सदृश वीर था, भाला उठाये, शत्रुओं को यमस्वरूप दिखलाई देता, दुर्ग पर चढ़ते हुए शत्रुओं कों विचलित एवं जहाँ तहाँ धराशायी करता, कुल-लज्जा को रखता, उन्नत मस्तक से आकाश को स्पर्श करता तथा रावत-पद-धारी वीरों को ललकारता हुआ सिवाना पर प्रसिद्ध युद्ध कर के दुर्ग को निजमस्तक समापत करता हुआ खड्गाघात द्वारा मृत्यु को प्राप्त हुआ।

(इस प्रकार) उस मंडोवर राजवंशी वीर कल्लाने मस्ती के साथ मर कर ख्याति प्राप्त की तथा प्रसिद्धि पाकर अपने नाम को यावत्चन्द्र दिवाकर अमर करते हुए, विमान में बैठ इन्द्रसभा में स्थान पाया।

राठौड़ गोवर्धनसिंह (चाँदावत, कूंपावत)

—: गीत १७ :—

गळबंध सुछळि अणभंग गोवरधन,
घण दळसौं वाधियौ घणो।
कमळि घाव वणियौ नवकोटा,
टीकौ जुध मेलिया तणो॥ १॥

मुह विहंडियौ भुजे राव मारू,
दुजड़ै भड़ा दाखतै देख।
चौरंगि चहुँदळां चांदाउत,
आगळि हुवा तणौ अविसेख॥ २॥

असहां रिख अणियां में आखित,
होइ वेदां धुणि वीर हक।
असिमर अंक कळोधर ईसर,
तो सिरि खत्रवट चौ तिलक॥ ३॥

मुह भांजिया तणा मौहेळा,
मिली ते साखी गयणि मिणी।
कुळ आभरण अभिनमा कूंपा,
भू- मंडळि चाढियो भणि॥ ४॥

[रच०-अज्ञात]

अर्थ:—हे अभंगवीर गोवर्धन सिंह राठौड़ ! तू वीर समूह का रक्षक और विशेष सेना से सम्मानित है। तेरे मस्तक पर शस्त्र का घाव ऐसी शोभा देता है, मानों युद्ध-तिलक तेरे भाल पर किया हो।

हे चाँदा के वंशज राठौड़ वीर ! जब तूने शत्रुवीरों को ललकार कर अपने बाहुबल से उनके मुँह (सेना के अग्रभाग) को तोड़ दिया तब चतुरंगिणी सेनाने तुझे चारगुना (अधिक) धन्यवाद दिया। (उस समय ऐसा लगा मानो) उस चतुरंगिनी सेनाने तुझपर अभिषेक किया हो।

हे ईश्वरदास की कला को धारण करनेवाले वीर ! युद्ध-समय अश्वारोही वीर ही ऋषि, शस्त्रों की अणियों ही अक्षत, वीरों की हुँकार ही वेदध्वनि और तेरे मस्तक पर लगाहुआ तलवार का (घाव) ही तिलक बनगया (इस प्रकार) मानो यह तेरा अभिषेक किया गया है।

हे नूतन कूंपा ! तूने ही मोहिल वीरों के मुहाले को तोड़ दिया, इसकी साक्षी सूर्य देता है। यही कारण है कि पृथ्वी के समस्त वीरों में तू विशेष वीर मानागया है।

राठौड़ गोवर्धन (चाँदावत, माधवसिंहोत)

—: गीत १८ :—

दव्व नायक जोध जोधहर दीपक,
गह पूरित सह विधि वड गात।
ग्रहिया चंदतणा गोवरधन,
छल भारी परियां कुल छात ॥ १ ॥

कटकां अणी ऊजलां कमधज,
मछर सपूरित निभै मण।
अणभँग सहज वडा आवरिया,
तणौ वीर जिम सिंघ तण॥ २ ॥

खत्रियां खत्री तिलक खेड़ेचौ,
सहदन विधि असिमर सधर।
सु करे विरद धारिया सबला,
हरै दूद जिम राम हर॥ ३ ॥

त्रैघण खाग जोवतां वाडिम,
मेर प्रमाणि मुरधरा मौड़।
मयंक तणी गोवरधन महियलि,
राजै सोह सु तणि राठौड़॥ ४ ॥

(रच०—अज्ञात)

अर्थः—हे वीर गोवर्धन! तू सेना का स्वामी, जोधा के कुल का दीप एवं विशाल काय है। तू पूर्णतया सहनशील है। हे वंश के छत्ररूप वीर! तुझमें वड़ों की रक्षा करने के स्वाभाविक वेही गुण (विद्यामान) हैं, जो तेरे पूर्वज चाँदा में थे।

हे सिंघा के पुत्र! तू और वीरम का पुत्र दोनों ही एक समान वीर हो। सेनाओं के अग्रभाग में रहकर राठौड़ वंश में पवित्र कहेजाने वाले, प्रमत्त, निर्भीक, अभंग एवं पूर्वजों के उद्देश्यों की पूर्ति करने वाले तुम दोनों ही हो।

क्षत्रियों में श्रेष्ठ राठौड़ कुल-तिलक, सदा शस्त्रधारी एवं अपने हाथों से विरुद प्राप्त करने वाले हे रामसिंह के पौत्र (या वंशज) तथा दूदा के पौत्र (या वंशज)! तुम दोनों समान ही वलवान हो।

हे राठौड़वीर गोवर्धन! तेरे द्वारा विशेष खड्गाघात होते देखकर और सुमेरु-सदृश उच्च स्वभाव वाला सोचकर कहना पड़ता कि तू मरु प्रदेश का सिर मौड़ है तथा ······ तेरे पूर्वज चांदा की छटा तेरे शरीर पर फबती है।

राठौड़ गोपालदास (कान्हौत, रायमलोत)

—: गीत १६ :—

वडा ताल़ मेल़ण करण काजि अचडां वधे,
जैतहथ् जीपयण वरण रण जंग।
मारकौ दल़ां रखपाल़ गोपाल़ मल,
गज गहण डोहण दूसरौ गंग ॥१॥

कान्हरौ खत्री गुरु अथणि आतम कियै,
वधै भीछां हूँता विघन वेल़ां।
मिलियै कूंत कर वियौ कलियांण मल,
मिलै तां हुवै जमरांण मेल़ां ॥२॥

खैड़ पति खाटिया वडां विरदां खवे,
छरां रखपाल़ अजुवाल़ छाडा।
पडंते भार पाहाड़ ज वडा प्रचँड,
ओडवैं भुजाडँड नहंग आडा ॥३॥

किये साखी कमल़ राइमल़ कलोधर,
पट हथां डसणि करिमाल़ पूजौं।

देसि परदेसि दल सिंघा दीपै दलं,
दलां री थंभ रिणिमाल दूजौ ॥४॥

(रच०-अज्ञात)

अर्थः—हे गोपालदास ! तू कार्य साधन के लिये युद्ध आगे बढ़कर तथा अडिग होकर शत्रुओं से हाथ मिलाता है । तेरे विजयी हाथ युद्ध में जयलक्ष्मी का वरण करवा देते हैं । तू शत्रु-संहारक बनकर अपनी सेना का रक्षक बनजाता है एवं गजसमूह को नष्ट करता हुआ, दूसरे ही गांगा के समान प्रतीत होता है ।

हे कान्हा के पुत्र (या वंशज) ! तू दूसरा ही कल्याणदास है । हे क्षत्रिय-गुरु ! तूने ही जोश में आकर आपत्ति के समय भयंकर शत्रुओं को नष्ट करदिया है । (युद्ध में) जब तूने अपने भाले को (दुश्मनों के) भालों से भिड़ाया, तब ऐसा दिखाई दिया मानों यमराज के यहां मेला लगगया हो ।

हे खेड़चे (राठौड़) वीर ! तेरे कंधों पर ही महा विरुद शोभा देते हैं । तू ही सैन्यपंक्ति का रक्षक, छाडा वंश को उज्वल करने वाला एवं प्रचंड पर्वतकाय होकर युद्ध भार आजाने पर आकाश को अपनी भुजाओं पर थाम लेने वाला है ।

हे रायमल की कला को धारण करने वाले वीर ! तू दूसरा ही रणमाल है । तेरे द्वारा काटे गये शत्रु-मस्तक ही तेरी वीरता के मालिरूप हैं । पटाधारी हाथियों को नष्ट करने वाला तेरा खड्ग पूजा जाता है । देश विदेश की सेनाओं में तू शत्रुओं का दलन करता हुआ सिंह के समान सुशोभित होता है । अपनी सेना के लिये तू स्तंभ के समान है ।

महाराजा गजसिंह (जोधपुर)

—: गीत २० :—

मुहरि मांडिजै काजि दिगविजय मंडोवरो,
धुर वमल सिरै परिगह धरीसै ।
दिलीवै सोच गजसाह मुख देखिजै,
दिलीवै हरिख तोड़ गजण दीसै ॥१॥

करण भारथ महा महाराजा कमँध,
मिलै भड़ताम सिर गयणि मेलै ।
चींत सुरितांण आगलि वियो चौंड रज,
चैन सुरितांण तिम न को चेलै ॥२॥

आभ थोभै भुजे मालहर आभरण,
वधे आधक छत्रां विसोवा वीस ।
दुचित दिलेस तद खलां मांथे दुगम,
सुचित तद परठिजै ऊवरां सीस ॥३॥

भिड़ै पतसाह सैं हाथि जिण भांजियां,
वडिम विधि जास दरिगह विराजै ।
इस विरद लिये ओ जगत ऊपरां,
सूर सुत तपै खत्रवाट साजै ॥४॥

(रच०—बारहठ नरहरदास)

अर्थ:—हे मण्डोवर-स्वामी गजसिंह! दिग्विजय के लिये जब तू अपने वृषभ-सदृश वीरों को साथ लेकर हरावल में हो जाता है, तब

दिल्लीश्वर (बाशाह) को (तुम्हारे प्रतिकूल होने पर सल्तनत नष्ट कर देने की) चिंता एवं (तुम्हारे अनुकूल रहने पर सल्तनत बनी रहने का) हर्ष साथ २ होता रहता है।

हे राठौड़ राजा ! तू दूसरा ही चौंडा है। जब दुश्मनों से तेरा सामना होता है, तब तू महायुद्ध करने के लिये अपना मस्तक आकाश से लगा देता है (उथल-पुथल मचा देता है)। यह देख कर बादशाह दुःख और सुख दोनों का अनुभव करता है।

हे मालदेव के कुल-भूषण ! तू (युद्ध के समय) जब आकाश को भुजाओं पर उठाकर (उथल-पुथल मचाकर) शत्रुओं पर भयानक आक्रमण करता है, तब तेरे पराक्रम को देख कर बादशाह उदास हो जाता है और शाही उमरावों का साथ देते हुए तुझे देख कर प्रसन्नचित्त दिखाई देता है।

हे सूरसिंह के पुत्र ! तूने एक ओर तो प्रतिकूल होकर बादशाह का नाशकर दिया और (दूसरी ओर) जब तू अनुकूल हो गया तब, उसकी सभा की शोभा बढ़ादी। (इस प्रकार) तू संसार में शाह-नाशक एवं शाह-रक्षक दोनों विरुदों से सुशोभित होकर शासन करता है।

महाराजा गजसिंह (जोधपुर)

—: गीत २१ :—

वडै कामि दलथंभ गजसाह दल तोड़ वदै,
　छात्रपति कमँध ए बोल छाजै।
　　रूकि पतिसाह दल लाज ते राखिजै॥
　　　भिड़े पतसाह रिणि तिहिज भांजै ॥१॥

सेन सुरतांण सुरताण सम चड़ि सबल,
अमर मंडल लगे एह आगाज ।
ऊबेलण परिभवण तणौ छल आवगो ॥
ऊजला खत्री थारे भुजे आज ॥२॥

अभिनमां चौंड रज भुजां बल ए रसौ,
छात्रपति ग्रहे ग्रह हूँत छोड़ै ।
असपती तणा दल पूठि तो ऊबरै,
मुंहि चड़े असपती तुहींज मोड़े ॥३॥

सूर सुत सुछलि दिल्लेस सक बंध सह,
तेज वधि दलां हूँ पैज तांणी ।
खाग झल खौंद बल छांडि खिसिया खलें,
वधै जैकार सुर अखिल वांणी ॥४॥

(रच०–बारहठ नरहरदास)

अर्थः—हे राठौड़, वीर गजसिंह ! सेनायें तुझे अपना स्तंभ मानती हैं और तुझे यह पद शोभा भी देता है, क्योंकि तेरी तलवार शाही सेना की लज्जा रखने वाली है तथा तुझ से जो बादशाह भिड़ता है, उसे तू युद्ध में नष्ट कर देता है ।

हे नरेश्वर ! शाही सेना तथा स्वयं बादशाह भी चढ़ आवे, तो (तू पाछे नहीं हट सकता) । इस बात की साक्षी स्वयं देवगण भी आकाश से देते हैं कि यह वीर (और तो सब ठीक, परन्तु) स्वर्ग को भी बचाने का साहस रखता है । (वास्तव में) आज तेरी भुजाओं के बल पर ही क्षत्रियत्व उज्ज्वल है ।

हे नूतन चूंडा के समान वीर! यह पृथ्वी तेरी भुजाओं सहारे ही टिकी है। तू कई छत्र धारियों को वन्धन में लेने अथ मुक्त करने की शक्ति रखता है। शाही सेना तेरे पक्ष में आकर वच जाती है; परन्तु जो बादशाह तेरा सामना करता है, उसे कद पीछे देना ही पड़ता है।

हे सूरसिंह के सुपुत्र! तू अपना प्रताप फैलाता हुआ प्रसि युद्ध करने वाले दिल्लीश्वर (बादशाह) का रक्षक बनकर तूने प्रतिज्ञा की और अपनी तलवार की ज्वाला से विपक्षी यवनों भय भीत कर भगा दिया, उसे देख कर सारा संसार एवं देवता ते जय २ कार करने लगे।

राठौड़ गदाधर (जैसालोत, गिरधरदासोत)

—: गीत २२ :—

वधे वीर हाकां धाकां धौम गैणाग धूवे,
पवंग जुधि मेलियौ दलां पहिलै।
आप छल बाप छल सांमि छल आवरां,
गदाधर खड़ग धर भूकि गहिलै ॥१॥

दल आदेसियौ वीर गुर दूसिरौ,
जैत्र हथ वाहतो करग रण जंगि।
वीर रस हाकले वाज रिणि वावलै,
मेलियौ आवळै थाटि अणभंगि ॥२॥

सावलां हूलां पाड़ि रीढ मातै समरि,
ऊजलै कमलि मुहरि अयारां।

त्रिजड़ हथि नांखियौ खैंग गिरधर तणौ,
सूर तन पूरियै सीसि सारां ॥३॥
भला भभ्राड़ि जैमाल केसव भुवणि,
जुड़े पह काजि पित आगली जेम ।
वधे वाखांण त्यां भड़ां न्याए वडा,
ऊवरै जीवतां स्यंभ होइ एम ॥४॥

(रच०—अज्ञात)

अर्थः—जिस समय वीरों की हुँकार और शोर गुल से आकाश प्रतिध्वनित होने लगा, उस समय वीर गदाधर ने अपने घोड़े को सब से आगे बढ़ाया और वह रणोन्मत्त अपनी, अपने पिता तथा अपने स्वामी की रक्षा करता हुआ खड्ग ग्रहण कर विपक्षियों से भिड़ पड़ा।

सेना ने उसे द्वितीय वीर- गुरु मानकर उसका अभिनन्दन किया। उस युद्ध के मतवाले वीररस से छके हुए वीर ने घोड़ा बढ़ाया और अपने विजयी हाथों द्वारा तलवार चलाकर अभंग सैन्य समूह में बुरी तरह उथल पुथल मचा दी ।

उस रणोन्मत्त, सतेजमुख और हठीले वीर गिरिधर के पुत्र ने शत्रु-सेना के अग्रभाग के वीरों के अंगों में भाला भोंक कर उन्हें गिरा दिया और घोड़े को सवेग बढ़ाकर प्रत्येक शुत्रु के मस्तक पर खड्गाघात किया ।

वह अपने पूर्वज जयमल और केशव को श्रेष्ठ वीर सिद्ध करता हुआ, अपने स्वामी के लिए उसके आगे आकर इस प्रकार लड़ा, जैसे पिता के लिए पुत्र। जो वीर मारे जाते हैं, उनकी प्रशंसा तो न्याय संगत ही है, परन्तु (गदाधर की तरह) इस प्रकार युद्ध कर बचने वाले वीर भी शुंभ दानव से कम नहीं कहेगए।

राठौड़ गोकुल (सुजानसिंहोत, ईसरोत)

—: गीत २३ :—

गहि चाढे मंडोवर जंगल,
सांकड़ां मिलियां दल सब्बल।
समहर कुल लज्या पै संकल,
गमां गमां वीटाणो गोकल ॥१॥

केवी मुहर पूठि सुर-कामिणि,
जड़ाधार पासे ब्योह जोगिणि।
मोहिया सुर अँतरीख गयण-मिणि,
राइजादो सोहियौ महारिणि ॥२॥

त्रूटै सार घुरै त्रंबालां,
विचि आउधां वहे वरमालां।
रेखग रुधिर काजि रखवालां,
सूजाउत ऊपरै सचाला ॥३॥

वप लोहां अपछर हँस वरियो,
सित्र माला खेचरि रत सरियौ।
आसाहरौ सुरां आवरियौ,
सुजि हरि जोति सुगति सांचरियौ ॥४॥

(रच०-अज्ञात)

अर्थः-जिस समय मंडोवर की घनी सेना ने जंगल प्रदेश पर चढ़ाई की, उस समय बलवान वीर एक दूसरे के पास आकर भिड़ने लगे।

उस समय वीर गोकुल जिसके पैरों में कुल-लज्जा की शृंखलाएँ पड़ी हुई थीं, शनैः शनैः घेरा जाने लगा।

उस राज वंशज वीर के सामने शत्रु, पीठ पर देवी और समीप ही शिव तथा योगिनियाँ थीं। अंतरिक्ष में सूर्य और देवता मुग्ध हो रहे थे। इस प्रकार वह वीर महारण में सुशोभित हुआ।

उस सूजा के वंशज के भिड़ने पर शस्त्र टूटने लगे, नक्कारे वजने लगे और शस्त्रों के चलने के साथ ही उस वीर पर अप्सराओं द्वारा वरमालाएँ फेंकी जाने लगीं तथा रक्तपात के इच्छुक, जिनके अंगों पर रेखाएँ हैं, ऐसे गिद्धादि पक्षी रक्षक रूप में ऊपर भ्रमण करने लगे।

उस आश (आसकर्ण के वंशज) के रक्त-रंजित शरीर का हँसती हुई अप्सरा ने वरण किया। शिव को मुण्डमाला एवं खेचरि आदि डाइनियों को रक्त प्राप्त हुआ। इस प्रकार देवताओं द्वारा वह सम्मानित हुआ और हरि-ज्योति में विलीन होकर मोक्ष को प्राप्त हुआ।

गिरधरदास (केशवदासोत)

—: गीत २४ :—

बिघन वार गिरधर सधर वाधियै वीर रसि,
पह सुछलि सगह आलम सँपैखै।
मरण मंगल जिसौ जाणियौ मोट मनि,
लाख खल सबल तिलमात लेखै ॥१॥

ऊससे नहँग लग भार सिरि आवियौ,
वाहतो कमँध जगि जग वखाणे।
अंत ऊछाह रिमराहि उर आणियौ,
जुडंतै वहल् दल् तूछ जांणे ॥२॥

हणे असुरांण तुड़ि तांण जैमल-हरै,
पाधरे पांण पिड़ि भुइ पचारै।
अमंगल् काल् आणंद सम ईखियौ,
सेन दूभर सुगम कीध सारे ॥३॥

हुवौ रिण थभ निय साथ त्रिमुहै हुवै,
त्रिदस मंनव हूवा तिणि तमासै।
सामि-ध्रम दाखि केसव तणो सींधलौ,
वरेगौ रभ सुरलोक वासे ॥४॥

(रच०-अज्ञात)

युद्ध की आपत्ति आने पर वीर गिरिधर के अंग ने वीर-रस की वृद्धि पाई, उस स्वामि-रक्षक वीर को उस समय सब देखने लगे उस उदारमना ने मृत्यु को मंगलप्रद और लाखों बलवान शत्रुओं को तिल मात्र समझा।

युद्ध का भार सिर पर आते ही उसने अपने मस्तक को आकाश से जा लगाया। उस को शस्त्राघात करते हुए देख कर प्रत्येक उस वीर की प्रशंसा करने लगा। शत्रुओं ने उसमें असीम उत्साह भर दिया। वह लड़ता हुआ महती सेना को तुच्छ समझने लगा।

जयमल के उस वंशज ने हाथ उठाकर यवनों के कवच तोड़ कर नष्ट कर दिए। और वह स्वयं शत्रुओं को ललकारता हुआ धराशायी होगया। उस वीर ने अमांगलिक समय को भी आनन्द प्रद और महती भयंकर सेना को भी साधारण समझा।

साथियों के पीठ बता देने पर भी वह युद्ध में स्तंभ स्वरूप होकर डटा रहा। इस कौतुक की ओर देवता और मनुष्यों के मन लग गए। इस प्रकार केशव का सिंह तुल्य पुत्र स्वामि धर्म को निभाता हुआ रंभा का वरण कर स्वर्ग में जा वसा।

राठौड़ चत्रभुज (नरहरदासोत, चाँपावत)

—: गीत २५ :—

चित मोटै जगत वखाणै चत्रभुज,
वैढुक धरीयै खत्री व्रति।
दादे जसौ गै-घड़ा डोहण,
पिता सरीखो विरद पति ॥१॥

सेन सनाह वींटियौ सफरिम,
सयल सपेखै करे सराह।
भांणा जिसो गज फौज भयंकर,
नरपालदै जिसौ नरनाह ॥२॥

ए सांमतां खांणि आगां लग,
इल उवचरै विसेखि इणि।
जेताउत सरिखा जग जैठी,
भाणाउत सरिखो भिड़णि ॥३॥

वाप तणे जु सरि अतुलि वल,
   धाल धमल जूतो वहसि ।
      कलि वाळे रखवालौ कमधज,
         जे सारे ऊजलौ जसि ॥४॥

(रच०—अज्ञात)

हे वीर चत्रभुज ! सारा विश्व तेरे उच्च मन की प्रशसा करता है। तूने शत्रु—संहार के लिए क्षात्र व्रत धारण किया है। अपने पितामह के समान तू गज-सेना का नायक और पिता के समान विरुद्धारी है।

हे लड़ाकू वीर ! सेना में कवच कसे हुए तुझे देखकर सब तेरी प्रशंसा करते हैं। तू भाणा के समान गज-सेना के लिए भयावना और नरपाल जैसा नरेश्वर है।

हे वीर ! तेरा यह वंश पहिले से ही विशेष प्रसिद्ध है। तू जेता के समान संसार में वली और भाणा के समान भिड़ने वाला है।

हे राठौड़ ! तू अपने पिता के समान ही अतुल वली है और धवल-वृषभ तुल्य होकर कीर्तिरूपी रथ में जुत गया है। इस कलियुग में तू ही एकमात्र रक्षक है। इसीलिए तेरा यश उज्ज्वल है।

महाराजा जसवंतसिंह प्रथम, (जोधपुर)

—: गीत २६ :—

छिले सेन साहण समँद कमँध ऊपरि छत्रां,
   ऊजला करे आरंभ अनिमंध ।
      पोकरणि पलटि गजबंध रा पाटपति,
         वाँधियौ जोधपुर गळे छत्रबंध ॥१॥

वाजते नगारे कटक चाले विसम,
जैत्र हथ स्त्रियौ इसौ रण जंग।
गढांरा गाव गलिया जसा गढपती,
गिरँद सिणगारियौ अभिनमा गंग ॥२॥

बाप जिम वडाही वडा वणिया विरद,
सूरहर आभरण भवां सारू।
महाराजा जु तै मांड कीधो विग्रह,
मंडोवर अंजसै राव मारू ॥३॥

खत्रीवट प्रगट करि जैत चाढी खवां,
कुल तिलक काढियौ कोट लियौ।
सपूताचार पतिसाह सनमानियौ,
वालतै पोकरण अंक वलियौ ॥४॥

(रच०—बारहठ नरहरदास)

अर्थः—हे महाराजा गजसिंह के ज्येष्ठ पुत्र! छत्रधारी वीर राठौड़! श्वारोही सेना तुझपर टूट पड़ी, तव तूने अद्भुत युद्ध छेड़कर अपने ा को उज्ज्वल कर दिया और गये हुए पोखरण दुर्ग को जोधपुर के धिकार में करा दिया।

हे दुर्गाधिप जसवंतसिंह! तू दूसरा ही गांगा है। तूने नक्कारे जाते हुए अपनी विषम सेना (युद्ध में) वढ़ाई और गढ़ाधिपों के गाँवों अधिकार कर अपने दुर्ग की शोभा वढ़ादी।

हे राठौड़ राज! तू सूरसिंह के वंशजों का शुरू से ही आभूषण प है। तू अपने पिता के सदृश ही विरुदधारी है। हे महाराजा!

तूने मांडा को मद रहित करदिया (अभिमान चूर्ण कर दिया) है, मंडोवर राज्य को उसका गर्व है।

हे वंश-तिलक-वीर ! तूने राजपूती वट को प्रसिद्धि देते हुए जो विजय का भार अपनी भुजाओं पर लिया एवं गये हुए पोखरण दुर्ग को अधिकृत किया, उस कृत्य का सम्मान स्वयं वादशाह ने भी किया। (वास्तव में) तेरा यह वीर-कर्तव्य निःसीम है।

राठौड़ नरेश जसवन्तसिंह प्रथम (जोधपुर)

—: गीत २७ :—

जग जेठी जोध जसा जोधपुरा, वड पह वाखाणे वखत,
तूं वारमे वरस ले खेड़े, तेरे साखां रो तखत ॥१॥
वणियो जसा वारहे वरसे, मुरधर सो तो जोड़ मिले,
तो सारिखो हिंदुओ तुरके, नव छाते ताणिये निले ॥२॥
वालक थके लियो अतुली वल, महपत नको प्रताप मणो,
सहित जोधपुरा सूर कलोधर, टीलो राव मालदे तणो ॥३॥
दलथँभ तणा दिलेसुर दीधी, जुड़ियो मुरधर सूर सक,
तो ऊगतो वांदियो तुरकां, आथमतो वांदे अरक ॥४॥

(रच०-अज्ञात)

अर्थः—हे जोधपुर के स्वामी जसवन्तसिंह ! तू संसार में वड़ा वीर माना जाता है और वड़े २ राजा तेरे शासन समय की प्रशंसा करते हैं। वारह वर्ष की आयु में ही तू खेड़ (मरु प्रदेश की प्राचीन राजधानी) का स्वामी हो तेरहों शाखा के राठौड़ों का तिलक स्वरूपी कहलाया।

हे जसवन्तसिंह ! बारह वर्ष की आयु में तेरा और मरुप्रदेश का अच्छा सम्बन्ध स्थापित हुआ। तू मरुप्रदेश से और मरुप्रदेश तुझ से शोभा पाने लगा। तेरा जैसा शोभा युक्त छत्रधारी और वीर हिन्दू और यवनों में कोई दिखाई नहीं पड़ता।

हे सूरसिंह की कला को धारण करने वाले जोधपुर के स्वामी ! तेरे प्रताप में किसी प्रकार की कमी नहीं। शैशवावस्था में ही तू अतुल बली हुआ, राव मालदेव के राज्य सिंहासन का तिलक तेरे ललाट पर किया गया।

हे नरेश ! मरु देश को तेरा शासन सूरसिंह के शासन-समय-सा ज्ञात हुआ और दिल्लीश्वर ने भी तुझे दल-थभ (सेनाका स्तंभ) उपाधि से सुशोभित किया। सूर्यास्त समय चन्द्रमा की वन्दना करने वाले यवन भी तेरे जैसे उदय होते सूर्य की वन्दना करने लगे।

महाराजा जसवंतसिंह प्रथम, (जोधपुर)

—: गीत २८ :—

कतब गोस अव दाल(स)सूफी अने कलंदर,
पीरजादां मले सांज परभात।
कांन पतसाह रा भरे एक राह कज,
वरे नहँ पड़े जसवंत जिते वात ॥१॥

मोलवी कराड़ै अरज काजी मुलां,
पाड़जे देवहर दलां कर पेल।
मेछ वांचे जका हींद अकलीज मझ,
खड़ो राजा जेते वणे नह खेल ॥२॥

अरथ कर नवा फुरमाण री आयतां,
लियां कर साहरे कांन लागे।
कहे मकदूम जुग हेक मजहब करो,
जसो हींदू धरम मदत जागे ॥३॥

देवलां मूरतां हूँत जौ कणी दिन,
खुरम रो डीकरो कुबद खेले।
दूठ तो तुरत गजसिंघ रो दीकरो,
मसीतां आभरा धुंआ मेले ॥४॥

सुरह दुज देव तीरथ निगम सासतर,
जनेऊ तलक तुलसी नरंजण जाप।
राह हींदू धरम तणे सावत रहै,
प्रगट मुरधर धणी तणो परताप ॥५॥

(रच०-अज्ञात)

अर्थः—कपट-गोष्ठी कर के सूफी, कलंदर और पीर-जादे श्याम सुबह आते हैं और बादशाह के कान भरते हैं, कि जब तक महाराजा जसवंतसिंह जीवित है, तब तक हिंदू और मुस्लिमोंका मजहब एक होना कठिन है।

मौलवी, काजी और मुल्लां अर्ज कराते रहते हैं कि हे बादशाह ! आप भले ही सेना चढ़ा कर देवालयों को ढहादें, परन्तु इस समय, जब तक कि महाराजा (जसवन्तसिंह) अपने कदमों पर खड़ा है, हिन्दुओं का यवन कहलाना कठिन है।

तूटो असण गसण तरवार्‌यां,
झीक वहे सावलां झल।
गलिया गजन तणे धवलागिर,
दहुँ पतसाहां तणा दल ॥३॥

अवरंग घाट थाट ओहटिया,
धड़ भेला लोटे धरणि।
वाले हेम जेम बाहुड़ियौ,
रूक रहलि दे झींक रण ॥४॥

(रच०–वारहठ नरहरदास

अथः—धवल-गिरि-तुल्य धूहड़ राठौड़ (जसवंतसिंह) ढोल आ रणवाद्यों के बजने पर जब धड़धड़ाने (गर्जने) लगा, तब विरो यवन पीड़ित होगये। उनकी रक्षा के लिये (वहाँ) ऐसा कोई भी दिख नहीं दिया, जो कंधे से कंधा मिलाता।

हिमाद्रि–तुल्य महाराज जसवंतसिंह जब वर्फ की तरह शस्‌ वर्षा करने लगा, तब शाह के पक्ष की बंगाली सेना कट २ कर गिर लगी। उस समय वह वीर चारों ओर लगातार वार करने लगा।

गजसिंह के उस धवलगिरि–तुल्य पुत्र (जसवंतसिंह) ने दो बादशाहों (शाह तथा शाहजादे) की अश्वारोही एवं गजारोही से नष्ट करदी। उस समय उसके कुंत–प्रहार की ज्वालायें (सब ओर फैलने लगा।

उस राठौड़ राज (जसवंतसिंह) ने, औरंगजेब के वीर-समू को जो उसी के सदृश (बलशाली) था, दबा दिया, जिससे वीरों के श एक ही जगह लुढ़कने लगे। (इस प्रकार हिमाद्रि–तुल्य वह वीर यु

में लगातार खड्ग-प्रहार कर शाही दल को दग्ध करता (अथवा लौटाता) हुआ अपने स्थान को लौट आया।

राठौड़ जोधसिंह

—: गीत ३० :—

रयण चाढ अवगाढ़ आरण मखै रारियां,
जोध वारण वड़ी समर जारो।
हद हुई गेन डारण तणा हात रो,
खलां उर दुसारण कूंतखारो ॥१॥

नहँग लग तोल़ वागां विकट नगारां,
मह अणी चगारां रगत मांजो।
कलोधर जगा रा धाड़ थारां करां,
गज खलां वगारापार गांजो ॥२॥

जोम छक हरक जड़ियाल़ भंजा गजां,
जेण तक वजर पड़ियाल़ जाणां।
जहर री छाक कड़ियाल़ तोरण जुधां,
पेमहर असो छड़ियाल़ पाणां ॥३॥

अरहरा घमोड़ा पाड़ धर अचीतो,
वडम भुज रचीतो वरद वांनो।
शेल थारे कमँध दखणपत सचीतो,
महावल़ नचीतो भूप मानो ॥४॥

(रच०—अज्ञात)

अर्थः—हे वीर जोधसिंह ! युद्ध-समय तेरा भाला उठा रहने वाला एवं धधकती हुई लोहकार की अहरण के समान है, जिससे गज समूह भस्मसात् होजाता है। हे भयंकर वीर ! तेरे उठे हुए भाले की सीमा गगन-मण्डल है (तेरा भाला गगनस्पर्शी है) और शत्रु-हृदय को विदीर्ण कर खटकने वाला है।

हे जगा की कला को धारण करने वाले वीर ! युद्धार्थ भयानक नक्कारे बजने पर तेरे हाथों में सुशोभित रहने वाला भाला आकाश को उठाने वाला, सेना में रक्त द्वारा माँजा जानेवाला और हाथियों एवं दुश्मनों को विदीर्ण करने वाला बन जाता है।

हे पेमा के पौत्र (या वंशज) ! तेरे हाथों में रहने वाले भाले को ज तू गरूर में आकर चलाता है, तब उसके वज्र-प्रहार से हाथी नष्ट हो जाते हैं तथा युद्ध समय कवचों को नष्ट करता हुआ, जहर की घूंट-सा (दुश्मनों को) प्रतीत होता है।

हे राठौड़ वीर ! तेरे हाथों में रहने वाला यह भाला शत्रुओं पर अचानक वार करता है। तेरे प्रलंब-बाहुओं को यश देता हुआ शोभा बढ़ाता रहता है। दक्षिणी वीरों को युद्धार्थ सचेत करनेवाले तेरे इस भाले के बल पर ही महाराजा मानसिंह (जोधपुर) सदानिश्चिन्त रहता है।

राठौड़ जालमसिंह (मेड़तिया, कुचामण)

—: गीत २१ :—

प्रळै साधवा फूटियौ सिंध वारध के लोप पाजां,
करी धू पटेत हकै छूटियो क्रोधार।
काळै पाख महा वेग तूटियो नखत्र किना,
जालमो उताळै रोस जूटियो जोधार ॥१॥

जै तेण तमासा सू रुकेगौ आयास रत्थी,
धार सत्थी नचै के ततत्थी वीरधाड़ ।
बखतेस महारास्थी केरवेस हूंत बागो,
रूकां ज्युं पारथी जालो लथोबत्थी राड़ ॥२॥

खिले जंत्रधार काली सिंधा वज्रताली खूटै,
सार जाली तूटे सिंध फूटे श्रौण सीर ।
जालमो अतूटै खेध इसै वेध लागो जूटै,
वाणासां विछूटै घाट छूटै नथी बीर ॥३॥

चीसे नाग चमूं जोम हुओ तोम चकाचूंध,
धमे कोम भमै गोम पड़ै सार धोम ।
विग्रहंतो देख महा असोम संग्राम बोले,
वाह वाह अहो सूर गिरवांण बोम ॥४॥

जूझ मत्ते आहंसी किसोर वाळै तीन जाम,
रूकां भीम नाद कीन दळां सूरो घाण ।
इळा जोधाणेस वाळी नू थपै जालमौ ऊभो,
जालमो पाड़ियां पछे ऊथपे जोधांण ॥५॥

(रच—खड़िया हुकमीचन्द)

अर्थः—योद्धा जालमसिंह क्रुद्ध होकर शत्रुओं पर इस प्रकार झपटा मानों सिंध देश का समुद्र तूफान पर आकर फूट पड़ा हो, हाथियों पर क्रुद्धसिंह झपटा हो, पक्षधारी सर्प उडा हो अथवा नक्षत्र टूटा हो ?

महारथी कौरवेशरूपी बखतसिंह के साथ जब अर्जुन तुल्य जालमसिंह गुत्थमगुत्था होकर जुट पड़ा, तब (रण में) सशस्त्र वीर-नृत्य होने लगा और उस कौतुक को देखने के लिये सूर्य ने आकाशमार्ग पर अपना रथ रोक लिया।

वीणा लिये हुए नारद एवं कालिका दोनों प्रसन्नमुख दिखाई दिये, सिद्धों की दृढ़ समाधि खुल गई, सिंह-सदृश वीर शस्त्र ग्रहण कर टूट पड़ने लगे एवं रक्त का स्रोत फूट पड़ा। (इस प्रकार) अभंग वीर जालमसिंह, शत्रुओं से भिड़कर उन्हें खदेड़ने लगा और तलवार के घाट उतारता हुआ रणस्थल से नहीं हटा।

सैन्य भार से शेषनाग सिसकने लगा, आग्नेयास्त्र के धूम एवं ताप की ज्वालाओं से चकाचौंध छा गई, कच्छप ऊर्ध्व श्वास लेने लगा, आकाश चक्कर खाने लगा और धमाके के साथ शस्त्राघात होने लगे। इस प्रकार जालमसिंह को उत्पात मचाता हुआ देख कर आकाश से देववाणी में देवतागण "धन्य है! धन्य है!!"—कहने लगे।

किशोरसिंह का मतवाला पुत्र जालमसिंह, तीन प्रहर तक झगड़ता रहा। उसने भीम-गर्जना करते हुए अपने खड्ग से शत्रुसेना को नष्ट कर जोधपुरेश्वर का आधिपत्य पृथ्वी पर स्थापित कर दिया। यह देखकर सब कहने लगे कि इस वीर के अभाव में ही मरुनरेश का आधिपत्य च्युत हो सकता है।

राठौड़ जगमाल

—: गीत ३२ :—

सेने साहणे समंद्र सोहे संसार सिरै सुकर,

उवारीजै दीजै मौजां इला अखियात।

पाट रो ऊधोर पिता पाट जागै पाटपति,
छाडाहरौ जगमाल हींदूकां री छात ॥१॥

ाचरे चरु सुकाल चीतजै ऊडंड चाउ,
सोह चाढे मालां सही सत्रां उरे साल।
निग्रहे अभंग नाथ डोहणे थाटां निडार
रेणा रखपाल राजै दूजौ रिणमाल ॥२॥

ामणै अनंमा नाद नवां कौटां चाढैं नीर,
आच त्रया आज जिसौ ऊदाहरौ इंद।
दाखणो अदेखां देख दीपियौ हींदू दुझाल,
मारुवो महीप दूजौ मालदे मसंद ॥३॥

ाजणो त्रिवेधी घड़ा भेलणो भिड़ज भाले,
ढाहणौ गयंदां खेति ढंढोलणौ ढाल।
आगली दला अभंग जैतखंभ हुवौ जुधे,
जोधाहरौ जग जेठ जोध जगमाल ॥४॥

केहरी ऊदल माल गंग वाघ सूजै जोध,
रिणमाल चौंडै वीर सलख रंढाल।
तीडै छाडै जाल्ह कांन्हड़ राइपाल धूंधै आसे,
राठौड़ राजंती सीहै छला रखपाल ॥५॥

(रच०-अज्ञात)

अर्थः—वीर जगमाल की अश्वारोही सेना समुद्र तुल्य है यह अपने हाथों द्वारा रक्षा करता तथा दान देकर अक्षुण्ण ख्याति प्राप्त करता रहता है। राज्यसिंहासन का रक्षक एवं अपने पिता के सिंहासन पर सुशोभित होने वाला है। यह छाडा का वंशज हिन्दुओं का छत्र है।

श्रेष्ठ भाग्यवाला यह वीर युद्ध के समय उद्दंड होकर मृत्यु को वसाने के लिए उत्सुक रहता है। मालदेव के वंशजों की शोभा बढ़ाता एवं शत्रुओं के लिए नाटशल्य (शस्त्र की अनी) के समान है। यह अभंग वीर निर्भीक शत्रु–समूह को नष्ट कर देता है। कवियों की रक्षा करने में यह दूसरा ही रणमल है।

अनम्र वीरों को यह गर्जना करके झुका देता और मरुप्रदेश को कान्तिमान वना देता है। ऊदा के वंशजों में आज यह इन्द्र रूपी होकर अपने हाथों दान देता रहता है। इसे देख कर यहा कहना पड़ता है कि इसके समान दूसरा कोई नहीं है। यह हिन्दू वीर भयानक और दीप्तिमान है। मरुदेशीय यह वीर दूसरा ही माल देव है।

त्रिविध (अश्वारोही, गजारोही और पैदल) सेना को नष्ट करने हाथ में भाला ले, घोड़े पर सवार होकर रणस्थल में प्रवेश करने हाथियों को गिरा देने, ढालरूपी वीरों की परीक्षा लेने और सेना के अग्रभाग में रहने वाला, अभंग विजय-स्तंभ के समान जोधा का वंशज वीर जगमाल संसार में वड़ा वीर कहा जाने वाला है।

सिंह–तुल्य इसके पूर्वज–ऊदा, मालदेव, गांगा, वाघा, सूजा, जोधा, रणमल, चूंडा, हठीला सलखा, टीडा, छाडा, जाल्हणसी, कान्हड़, रायपाल, धूंधा, आशा और सीहा हुए हैं। वैसाही यह राठोड़ रक्षकों का भी रक्षक है।

राठोड़ जगमाल (किशनसिंहोत)

—: गीत ३३ :—

सत्रवट वह खाग तियाग अखूटित,
समहर जीपणहार सत्र।
तारण कवि, केहरी तणौ भ्रम,
जगो-जगो भाखे जग ॥१॥

असिमर दान अभंग अण पहड़ित,
चित भालिम निय क्रित कुल चाल।
प्रिसण वहण पत्र पड़ि गाहण,
जग सिगलोइ आखे जगमाल ॥२॥

करिमर चाउ अभंग कुल-दीपक,
दीपै त्रिद मोटा सु दलि।
अर ऊथापण कवि थापण इल,
मालहरो भ्रमणौ मंडलि ॥३॥

निकलंक खड्ग तियाग निभै नर,
गाढां गुर सबदी गजबंध।
अरियण वडा वहण पिड़ि आचे,
कायम वड दन दियण कमंध ॥४॥

(रच०—अज्ञात)

अर्थः—हे केशरीसिंह के पुत्र (या वंशज) जगमाल ! संसार र २ तेरा नाम लेकर यह कहता है कि यह वीर क्षत्रिय वट (मरोड़

ऐंठ) धारण कर खड्ग चलाता रहता है। इस का अनुपम त्याग (दान) कवियों को पार लगाने (आपत्ति दूर करने) वाला है।

हे वीर ! तेरा नाम ले-लेकर जग पुकारता है कि यह खड्ग चलाने में अभंग वीर और दान देने में अपूर्व है। यह देखा गया है कि इसका चित्त अपने कुल-कर्तव्य की ओर रहता है। यह शत्रु को पत्र द्वारा सूचित कर उन्हें कुचल देता है।

हे मालदेव के वंशज ! सारा मण्डल (प्रदेश) कहता है कि यह वीर तलवार पकड़ने में उत्साही और नाश रहित कुल-दीपक है। जिस प्रकार यह उदारमना है उसी प्रकार इसके विरुद भी भारी है। यह शत्रुओं का नाशक और कवियों को स्थापित करने वाला है।

हे निर्भय राठौड़ वीर ! तेरा खड्ग ग्रहण करना और दान देना, दोनों ही निष्कलंक हैं। इसीलिए हे गजारोही ! तू दृढ़ वीर और बड़ा यशस्वी माना जाता है। अतः अपने हाथों से बड़े २ शत्रुओं का नाश करने और दान देनेवाले, हे वीर ! तू बहुत दिनों तक शासन करता रह।

राठौड़ जूझारसिंह (जगमालोत, नरसिंह दासोत)

—: गीत २४ :—

त्रडिम वार वड्रवार 'खत्रभार धरियै विसवि,
डांडहड़ि सावलां खलां डोहै।
सिंघ झूझार नरसिंघ रा सींघला,
सूर वट सुपणवट भुजे सोहै ॥१॥

किये अरणडोल चित कूंभ कूंभायलां,
हायलां खलां हणि पूर बल हांम।
प्रबल बल घड़ा अचलां वरण बीर वर,
बिराजै उभै बिड़ भुजे वरियाम॥ २॥
ऊजला ऊमैव भूपाल-हर आभरण,
मिड़णि खगि जैत सूंडाल भांजै।
अतुल बल तांहरै सु तणि ऊँचासिरा,
छलां रखपाल बे साह छाजै॥ ३॥
समर झीपै सबल बडा खाटै सुजस,
जिको जो जिहीं कुलवाट जोवै।
सूर सुद्तार झूंझारसिंघ (तो जिसा),
हुवै कित इसा ताहं जहु होवै॥ ४॥

(रच०—अज्ञात)

अर्थ—हे नृसिंहदास के सिंह तुल्य पुत्र झूंझारसिंह! तू भारी आपत्ति के समय दुर्धार शस्त्र-भार को धारण कर तलवार एवं भालों के विशेष आघात से शत्रुओं का मर्दन कर देता है। इसीलिए तेरी ही भुजाओं पर वीरता और सुजनता दोनों साथ २ ही सुशोभित होती हैं।

हे वीर! तूने हाथियों के चित्त को चंचल और उनके कुंभस्थल को दुस्तर कर दिया तथा अपने बल का विश्वास दिला दिया एवं आघात से शत्रुओं को नष्ट कर दिया। हे वीर श्रेष्ठ! तू विशेष दान देता रहता तथा वश में न आने वाली सेना को वश में कर लेता है। यह दोनों प्रकार के बिरुद तेरी ही भुजाओं पर इस समय शोभा पाते हैं।

हे राजवंशजों के भूषण! तेरे ही कारण राठौड़ उज्ज्वल हैं। तू भिड़ता हुआ तलवार द्वारा हाथियों को काट कर विजय प्राप्त करता रहता है। अतुल वलके कारण ही उच्च राजवंशजों में श्रेष्ठ तथा रक्षा करने से रक्षक, इन दोनों विरुदों से तू सुशोभित है।

युद्धों में विजय प्राप्त कर बलवान कहाना और विशेप यश प्राप्त करना यह वही कर सकता है, जो अपने कुल-मार्ग को जानता हो। परन्तु हे जूझारसिंह ! तेरे समान जिनके कृत्य हों, वे अवश्य वीर और उदार कहे जा सकते हैं।

राठौड़ दयालदास (सूरजमलोत चाँपावत)

—: गीत ३५ :—

पह मिलियां कवी मनोरथ पूरण,
रिम अड़ियां मातै रणताल़।
पैजां पाल उजाल़ण परियां,
दल़ आगल़ झल़हल़ै दयाल़ ॥१॥

पात्रां दन मोटा निज पांणे,
चौरँगि खल़ां साबल़ां चोट।
दूजो जेत दियंतौ दीपै,
कटकां वधे दुवाहौ कोट ॥२॥

घण वींटियौ कवी मोटा घण,
घण सत्रवां वहंतो घाउ।
अनिकारां मुहरी ऊचवहौ,
सौहे सूरजमल सूजाउ ॥३॥

वाकारियौ वधै चित वैला,
रेणु दनी रिम खगि राठौड़।
दलां सिंगार त्रियौ जैसिंघदै,
मिहि तिणि भलां भलौ कुलमौड़ ॥४॥

(रच०—अज्ञात)

अर्थः—हे वीर दयालदास! तू प्रतिज्ञा-पालक एवं अपने पुरखाओं को उज्ज्वलता देने वाला है। जब तेरे पास कोई कवि आता है, तब तू उसकी इच्छा पूर्ति कर देता है और शत्रु भिड़ने के लिये आता है, तो तू जाज्वल्य मान होकर एवं हरावल में डटकर लगातार शस्त्र प्रहार करता है।

हे दूसरे ही जैता! तू दान देकर जिन हाथों से कवियों को सब प्रकार से सम्पन्न कर देता है, उन्हीं हाथों से चतुरंगिणी सेना पर भाला चलाता हुआ (दुश्मनों के लिये) दिवाल की तरह आड़ बन जाता है।

हे सूरजमल के सुपुत्र! तू जब कवियों से घिरा रहता है, तब करणों से उन्नत दिखाई देता है तथा शत्रुओं पर प्रहार करने पर श्रेष्ठ वीरों से उन्नत मस्तक किया हुआ शोभा पाता है।

हे दूसरे ही जयसिंह! पृथ्वी पर तू अपने वंश का सिरमोड़ है। सेना का शृंगार है। उच्चस्वर से आवाज देने (कवि द्वारा प्रोत्साहित करने एवं शत्रु द्वारा ललकार ने) पर तू एक (कवि) की तो सौभाग्य-वृद्धि और दूसरे (शत्रु) को खड्ग से नष्ट कर देता है।

राडौड़ दलपतसिंह (गोपालदासोत चाँपावत)

—: गीत ३६ :—

वधे वाधियै विघन विघना तणौ विसाहू,
पवन उपड़ांखियै पिड़ि पईठौ ।
डौचियै सेल पछिवांण करतौ दलां,
दलौ कावील सुर नरे दीठौ ॥१॥

पाल रौ दलां रखपाल बिरदाधपति,
पह वडा भलां तै खाग पूजौ ।
डोलिया साथ पूठै सत्रां डारतौ,
दल दहुँ पेखियौ मयँक दूजौ ॥२॥

खेंग खुरसांण रै खेंात खूरै खरै,
कहर आफालतौ सुपह रैकांमि ।
डिगंतो भीर मेछां घड़ा डोहतौ,
सयलचित चढे रिणमाल–हर सामि ॥३॥

वाज वाढाड़ि दोइ वसि चाढे वडिम,
घड़ां ध्रवि धार भूझे अघायौ ।
जीवतो संभ दल साह दीपे जगति,
जेत्र हथ कमध गोपालि जायौ ॥४॥

(रच०–अज्ञात)

अर्थः—वीर दलपतसिंह रास्ते चलते आपत्ति को मोल लेने वाला है। युद्ध छिड़ने पर पवन–वेग से यह उन्नत स्कंध धारी आगे बढ़ता

हुआ युद्ध में प्रवेश करता और पश्चिम देशीय (काबुली) सेना को सहज ही काटता हुआ सुर नरों को दृष्टिगोचर हुआ।

यह पाला का वंशज दूसरा ही चाँदा (या जयचन्द्र) है। इसके विरुद्द दल-रक्षक होने से बड़े २ राजा इसकी तलवार की पूजा करते हैं। इसके द्वारा मारे गए वीरों को झोलियों में डाल और पीठ पीर लाद कर ले जाते हुए शत्रुओं को दोनों सेनाओं ने देखा।

इस रणमाल के वंशज ने युद्ध में भिड़कर अपने स्वामी के कार्य के लिए खुरासानियों (यवनों) को काट कर अश्वखुरों से कुचल दिया। शत्रु समूह को हटा कर यवन सेना को नष्ट कर दिया। उस समय इसका वीर स्वरूप सबके चित्त में बस गया।

इस गोपालदास के पुत्र विजयी राठौड़ ने घोड़े को युद्ध स्थल में बढ़ाया और सेना पर तलवार चलाई। इसने युद्ध में तृप्त होकर (भारी युद्ध करके) मातृ और पितृ पक्ष को गौरवान्वित कर दिया। यह जीवित शुम्भ दानव सा सुशोभित हुआ।

राठौड़ धीरतसिंह (अमरसिंह का वंशज)

—: गीत ३७ :—

चोड़े झांपता विहंगा ताता बोलता जरदां चाक,
बाजतां सिरमी पाना होतां रनां बाट।
उडंता बंदूकां आग जागता छड़ा (ला) अणी,
नगारा धुवंतां आयो अछायो निराट ॥१॥
करा के ऊघड़ा खाग तोड़े आंग क्यां हकारे,
छाकियां क्या हकां भुजां बालिया छड़ाल।

चाल़ बांधी काल़ रूपी नाल़ वाल़ा रागां चाटि,
ताल़ पाखे जवेना हू भेले निराताल़ ॥२॥
बाल़े घाव जांगियां कुराण बाच लगा बोम,
रोस भीना दोवड़ा चळ्ला ऊडे रीठ,
साड़कां छड़ाल़ा धारां कटारां जवंना सेती,
ताखा भड़ा बापूकारे मेलि़या नतीठ ॥३॥
धरा धूजि आगी जागी मिसा दीह धूंवाधोर,
तेज हास हींस एक डाक ताल़ ।
सारधारां मातो खेह भाई चाडि रोल़े सींह,
कोट भेल़े धोल़े दीह मेछां प्रलेकाल़ ॥४॥
अमरेस वाल़े पाट हेट हेट जैतवार,
भड़ा रा चकारां पोतकारे आंपनीर ।
पांणी चाढ़ मेड़ते मीरखां डाँडि रूकां पांण,
धाड़ रे मांटीपणे जीतो राड़ धीर ॥५॥

(रच०–खड़िया बगता)

अर्थः—कवच कसे हुए वीर धीरजसिंह युद्ध स्थल में (दुश्मनों को) ललकारता, तलवार चलाता घोड़े बढ़ाता, सेना में रास्ता करता, तुपकें चलाता, भालों से आग बरसाता और नक्कारे बजवाता हुआ अपने साथियां सहित अकस्मात् दुश्मनों पर आ धमका ।

वीर धीरतसिंह ने जब अपनी सेना को यम-पाश के रूप में पंक्तिबद्ध किया, तब कई यवन तलवारों से काटे जाने लगे, ललकार के साथ कई तुपकें दागी जाने लगीं, कई वीर घायल होकर भी बढ़ने लगे;

कितने ही वीरों की भुजाओं पर भाले शोभने लगे और तुपकों से छूटकर गोलियाँ सुन्नाने लगी। (इस प्रकार) उसने क्षणभर में ही यवनों को उथल पुथल कर दिया।

जब यवन भी एक ओर से कुरान पढ़ते एवं आकाश को छूते हुए नक्कारे बजवाने लगे, तब दोनों पंक्तिबद्ध क्रुद्ध सेनाओं में शस्त्र झड़ी होने लगी, उस समय दूसरी ओर से धीरतसिंह अपने साथियों का उत्साह बढ़ाता हुआ बाण, भाले, तलवार एवं कटारों के वार यवनों पर जोरों से करने लगा।

आग्नेयास्त्रों (तोपों आदि) से आग धधकने पर (चारों ओर) धूम ही धूम छा गया, जिससे दिन भी रात सा बन गया। (उस युद्ध से) पृथ्वी कंपायमान हो गई, ताने (तेज) घोड़ों की हिन हिनाहट एवं उछल कूद से टापों की ध्वनि होने लगी। इस प्रकार वह यवनों का प्रलय काल रूप एवं सिंह सदृश वीर धीरतसिंह, मस्ती में आकर तलवार चलाता और अपार रजराशि से आकाश को आच्छादित करता हुआ दिन दहाड़े दुर्ग में प्रविष्ट हो गया।

अमरसिंह के सिंहासन पर सुशोभित होने वाले उस वीर धीरत-सिंह ने हठपूर्वक विजय प्राप्त करते हुए यवन योद्धाओं के नूर (कान्ति) से पोत कर सेड़ते दुर्ग को कान्ति युक्त कर दिया और तलवार के बल मीरखां को दंडित कर अपनी सेना द्वारा जय प्राप्त की।

राठौड़ नरपाल[1]

—: गीत ३८ :—

आखेटी थाट जोध आफलिया,

मुजि नरपाल मले कुलभार।

---

[1] एक संग्रह में नरहर दास लिखा है।

भांण तणो रहियो भारी हथ,
दातड़ियाल मिटंती डार ॥१॥
ईसर हरौ थोभियौ अणभँग,
धसतौ ऊससतौ कुल़ धौड़ ।
डार सनाह जाऊते दूजे,
रिणि रोहै सोहै राठौड़ ॥२॥
वीजूजल़ दांत दूसरौ वीकौ,
साहे आवाहै सबल़ ।
खल पारधी गुड़थल़ खायै,
दाढालीसिरि हूँकल़ै दल़ ॥३॥
राणा हरौ रूँधो वीरा रसि,
औखाल़ै भाले अपल ।
मरि मारियौ घणे मार हथे,
मारू एकल आप मल़ ॥४॥

(रच०–अज्ञात)

अर्थः—युद्ध में विपक्षी योद्धाओं के शिकारी की तरह जुट पड़ने पर वीर नरपाल जो भाण का पुत्र एवं प्रलंब वाहु था, उसने राठौड़ वंश का भार अपने वाहु पर लिया और छोटे २ शूकर सदृश अपने साथियों के नष्ट होजाने पर वड़ी २ दंतूसल वाला वाराह वन गया ।

छोटे शूकरों की टोली के समान अन्य साथियों के भाग जाने पर ईशरसिंह का अभंग वंशज (नरपाल) युद्ध में (वाराह वनकर) डट गया । उस समय वह धूहड़ वंशी भुह राठौड़, शत्रु–समूह में घिर कर शोभा पाने लगा ।

उस दंष्ट्राधारी वाराह सदृश वीर (नरपाल) ने तलवार उठाकर उसे दंतूसल का रूप दे दिया। तदनन्तर जब वह दूसरे वीका (वीर विशेष) के समान डकर (हुँकार) कर शत्रु के सामने बढा, तब व्याध-तुल्य शत्रु जमीन पर गिरने लगे।

उस राणा (उपाधि अथवा नाम विशेष) के वंशज राठौड़ (नरपाल) जो स्वतंत्र विचरण करने वाले वाराह के समान था, उस ने (युद्ध में) भिड़ कर अतुलनीय शत्रु वीरों को भाले से खदेड़ते हुए वाराह-सदृश रौंधा जाकर मृत्यु प्राप्त की।

राठौड़ नरपाल (नरहरदास, भाणौत, चाँपावत)

—: गीत ३६ :—

वल़ चड़ियां भड़ा वाधियै वीरत,
केवी सौ ऊकटियै काट।
आडो लख थाटां अड़सालौ,
नरपाल़ौ मांडिजे निराट ॥१॥

कलि वाधी जैतमल्ल कल़ोधर,
गज फौजां डोहण गहण।
समहर भर ऊपरि नवसहसौ,
ताड़ ओड विजै भांण तण ॥२॥

खागां हणि गै डसण खाट कै,
वीर हाक वधियै वकवाद।
चौरंगि अभंग तणौ व्या चांपा,
मुह जोवै दल़ मेर प्रजाद ॥३॥

पिडी फौजां मांभी पाड़ीजे,
पांणे जल चाढिजै परो,
ग्रवि ग्रवि अवड़ो हुवै पराक्रम,
हणमत काइ रिणमाल हरो ॥४॥

(रच०—अज्ञात)

अर्थः—वीर नरपाल (नरहरदास) शक्ति प्रदर्शित कर अपने वीरों में वीर-रस की वृद्धि कर देता है और क्षुधित की भांति शत्रुओं को काट देता है। यह अरिसाल का वंशज लाखों की संख्या वाले सैन्य-समूह को रोकने के लिए सवेग बढ़ने वाला है।

जैतमाल की कला को धारण करने वाले इस वीर ने अपनी कला (कान्ति) में वृद्धि कर दी है। यह भारी गजारोही सेना को भ्रमित कर देता है और युद्ध में यह भाण का पुत्र वीर राठौड़ सब वीरों से उच्च तथा अगेला स्वरूप माना जाता है।

खट खटाता हुआ इसका खड्गाघात हाथियों को भक्षण कर जाता है और युद्धवाद छिड़ने पर यह वीर हुंकार करता रहता है। इसका यह अभंग पन चौगुना प्रशंसनीय है। यह तो दूसरा ही चांपा है और मर्यादा का साक्षात् सुमेरु है। सारी सेना इसका मुँह देखती है रहती (इसी की वीरता पर निर्भर है)।

यह सेनाओं के मुखियाओं को धराशायी कर अपनी शक्ति द्वारा कान्तिमान हो जाता है। हनुमान के समान शरीर वाला यह रणमाल का वंशज प्रत्येक युद्ध में ऐसा ही पराक्रम दिखाता रहता है।

राठौड़ पृथ्वीराज (दलपतोत)

—: गीत ५० :—

दळां चाल बांधि भले भार दळ साह रै,
आफळे खळां खागे उबारे।
दीह धोळे मिले करमसी दूसरै,
पीथले मेलियौ कलह पांणे ॥१॥

ऊधरण वंश हरदास-हर आमरण,
जिड़ रिणवट नकां जांन जोई।
जको धरथंभ राठौड़ हूँतौ जगति,
मार मरि हुवौ दळथंभ सोई ॥२॥

कियो घोड़ां भड़ां मेल ऊखेल करि,
बांकुड़ो टूकड़े वैरि बागे।
धूहड़ाराह आंनाड़ि चाढे धके,
खेड़पति डाहियौ मांड खागे ॥३॥

सहरि विक्रमपुरां राऊ आपड़ि सुवो,
वाजते नगारे कलह वीतो।
पाडि ऊमो खल्क दूसरो पँचाइण,
जादवां खेत राठौड़ जीतो ॥४॥

(रच०—अज्ञात)

अर्थः—वीर पीथल (पृथ्वीराज) जो दूसरा ही कर्मसिंह सदृश था, ने सेनाको पंक्तिबद्ध किया तथा शाही-दल का भार लेते हुए

तलवार उठाकर दिन रहते (दुश्मन से) भिड़ गया। (इस प्रकार) उसने शत्रुओं से युद्ध में हाथ मिलाया।

वह राठौड़-कुल-भूपण हरदास का वंशज (पृथ्वीराज) अपने वंश का उद्धार करने के लिये शत्रु-सेना की, यद्यपि वह झंझावात-सदृश (भयंकर) था, परवाह नहीं कर युद्ध में भिड़ गया। संसार में जो धरा-स्तंभ कहा जाता था, वही वीर शस्त्र-भार ग्रहण कर दल (सेना) का स्तंभ बनगया।

उस पर्वतकाय धुहड़वंशी वांके खेड़ेचे (राठौड़) वीर ने (सामने से) हाथियों को हटाकर घोड़ों और वीरों से टक्कर ली तथ विपक्षियों का पीछा कर उन्हें भगाते हुए खड्ग द्वारा उथल पुथल मचादी

यद्यपि वह वीकापुर (वीकानैर) का राजवंशज (इसप्रकार प्रमत्त होकर धराशायी हुआ और नक्कारों के बजते हुए युद्ध की समाप्ति हुई; फिर भी उस पंचायण तुल्य वीर ने खड़े होकर शत्रुओं को धराशायी कर दिया और युद्धक्षेत्र में यादव (या-भाटी) क्षत्रियों पर विजय प्राप्त की

राठौड़ पृथ्वीराज (भीमोत, ऊदावत)

—: गीत ४१ :—

दल आगल सबल रतनसी दूजा,
कुल मारगि ऊभियै करि।
पौरिस वडिम तुहारा पीथल,
पार न लाधो किएही परि ॥१॥
इनि मोहरी पूजै अतुली बल,
समहर सुकवि सुयण वट सीम।

रज रखपाल रूप राठवड़ां,
भालिम नमो समोभ्रम भीम ॥२॥

कटकां वधि दाखै राव कमधज,
पौरिस खल ईढगां प्रमाण।
सयल वखांण करै नव सँहसा,
क्रित धन धन अभिनमा कल्याण ॥३॥

भड़ां किमाड़ निरवहै भुव ब्बालि,
सार सु दनि ऊदा सनस।
जुध आचार अभिनमा जसवँत,
जग दीपै ऊजलौ जस ॥४॥

(रच०–अज्ञात)

अर्थः—हे बलवान पृथ्वीराज ! तू दूसरा ही रत्नसिंह है। तू कुल-मार्ग पर पग बढ़ाता और हाथ उठाता हुआ सेना के अग्रभाग में दिखाई देता है। तेरे विशेष पराक्रम का किसी ने पार नहीं पाया।

हे अतुल वली ! तू युद्ध के समय हरावल के आगे श्रेष्ठ कवियों, सज्जनों और क्षात्र वट की सीमा कहे जाने वाले वीरों द्वारा पूजा जाता है। क्योंकि तू रजोगुण प्रधान और राठौड़ों का शोभा स्वरूप है। अतः हे भीमसिंह की भ्रान्ति देने वाले भाग्यशाली ! तू वंदनीय है।

हे नूतन कल्याण, राठौड़ वीर ! तेरे जैसे (पहले हो चुके) वीरों के समान तुझे सेना में वढ़ता हुआ देखकर शत्रु भी तेरा पुरुपार्थ मानते हैं और सारा मरु प्रदेश प्रशंसा करता हुआ कहता है कि इस वीर का यश धन्य है !

हे वीर ! तू सामन्तों का कपाट (रक्षक) कहा जाता है। उस विरुद को तू अपनी भुजाओं के बल पर निभाता है। तेरा लोहा रखना (शस्त्र धारण करना) और भाग्यशाली होना ऊदा के समान है। युद्ध-क्रीड़ा में तू नूतन जसवन्तसिंह कहा जाता है। अतः तेरे उज्ज्वल यश से संसार देदीप्यमान है।

राठौड़ पीथल (पृथ्वीराज या पृथ्वीसिंह, भारमलोत)

—: गीत ४२ :—

पुरुषारथ समथ पराक्रम पीथल,
धू हड़ धन तै खत्र-धरम।
दिन जेतला प्रवाड़ा दीपै,
वरिस जिता तेती वडम ॥१॥

मोटा जल् चाढण मंडोवरि,
समहरि गज गूडण सनढ़।
ऊदै खल् सो आफलते,
गढ़पति होवै फते गढ़ ॥२॥

ताइ सामंतां मुहर आडै तण,
भुज बल् तियै साखियौ भांण।
पाखर रवद बल्ाउत पर भुइ,
पतसाहे पूजिजै प्रमांण ॥३॥

पाड़े खल् पड़ि पड़ि ऊपड़ियौ,
भारथि दल् डोहे अभंग।

दिल्ली सुपह तेजसी दूजा,
दाखै सुज पूजा दुरंग ॥४॥

महि आमरख विड़ा मारहमल,
महा भयंकर महाभड़ ।
साजो जस ऊँचौ सम धारियौ,
ऊँच वांस आभां अनड़ ॥५॥

(रच०—अज्ञात)

अर्थ:—हे राठौड़ वीर पीथल ! तू पुरुषार्थी, सामर्थ्यवान् और पराक्रमी योद्धा है। तेरे भुजबल को धन्य है ! अन्य वीर एक वर्ष में जितनी ख्याति प्राप्त कर पाते हैं, उतनी ख्याति तू एक दिन में प्राप्त कर लेता है।

हे दुर्गाधिप ! तू मंडोवर को विशेष कांतिमान करने के लिये सजग होकर युद्ध में हाथियों को गिराता रहता है और प्रतिदिन सूर्योदय होते ही शत्रुओं से छुड़ाकर दुर्गों पर अधिकार कर लेता है।

हे वाला के पुत्र (या वंशज) ! तू योद्धाओं में अग्रगण्य एवं उनके लिये अनोखा स्वरूप है। तेरे भुजबल का साक्षी सूर्य है। तू पराये भूभाग में यवनों का रक्षक बन जाता है; इसीलिये शाह तेरी पूजा करता है

हे वीर ! घायल होकर धराशायी होते हुए भी तू खड़ा हो जाता है एवं शत्रुओं को पछाड़ देता है तथा (युद्ध में) (शत्रु की असंख्य सेना के ऊपर प्रहार कर देता है। इसलिये तेरी भुजाओं की पूजा करता हुआ (शाह) कहता है, कि यह दूसरा ही तेजसिंह सदृश भयानक वीर है।

हे दूसरे ही भारमल ! तू पृथ्वी का भूषण है। योद्धाओं में भयानक एवं महान् वीर है; तेरा यश जिस तरह उच्च है, उसी प्रकार तेरी टेक (मर्यादा) भी उच्च है और तू स्वयं चमकते हुए पर्वत (सुमेरु)-सदृश उन्नत है।

महाराजा बलवन्तसिंह (रतलाम)

—: गीत ४३ :—

वडा वडी रो अमूल् कनां पती त्रिलोक रो वांण,
लगावे सोकरो हिये दलेसां लडाल्।
प्राण खलां थोकरो लेवाल् लंकालरो पंजो,
छोकरो काल रो वळूतेस रो छड़ाल् ॥१॥

अभ्रियामणा घाट रो गुलालो रहे श्रोण आलो,
उरां सालो केकां फते खाट रो अधूत।
रोखंगी जलालो शत्रां थाट रो वखेर राले,
प्रथीनाथ चालो भालो गुज्राट रो पूत ॥२॥

खिजायो त्रिनेण प्रल्काल् रो रिमां धू खंगे,
पांखियो नागेंद्र फते पाव रो प्रभाव।
लेवाल् अंतरो गजां घावरो सुमार लागे,
सेल मारू-रात्र रो कृतांत रो सुजाव ॥३॥

प्रवतेस नद लागे भोकरे लड़ाल् पाणां,
भलक्के तड़ाल रूपी वागता भारात।

आद ब्रह्म धावे को जोगींद्र बंचे काल आगे,
ना बंचे छड़ाल आगे शत्रू प्रथीनाथ ॥४॥
(रच०—अज्ञात)

अर्थः—हे बलवंतसिंह! यह तेरा भाला है अथवा योगिनियों में सबसे बड़ी देवी का त्रिशूल है? या त्रैलोक्य के स्वामी राम का वाण, युद्धार्थी दिल्लीश्वरों के हृदय में चिंता उत्पन्न करने वाला, सिंह का पंजा अथवा यमराज का पुत्र है?

हे पृथ्वी पति! तेरा यह रक्तरंजित भाला विद्युत्पात-सा है, शत्रुओं के हृदय में चुभकर विचित्र विजय पाने वाला, रोषभरे जालिम शत्रुओं के समूह को तितर बितर कर देने वाला अथवा काल (मृत्यु) का पुत्र है?

हे राठौड़ राज! आपका यह भाला कुपित शिव का तृतीय नेत्र है? अथवा शत्रु-मुंडों के लिये प्रलय-रूप, जय देने वाला सपत्र-सर्प, आघातों से हाथियों का प्राणहर्ता या यम का पुत्र है?

हे पर्वतसिंह के पुत्र पृथ्वीपति! तू जब झूमता हुआ युद्ध के समय अपने प्यारे भाले को उठाता है, तब वह बिजली की तरह चमकता हुआ दिखाई देता है। संभवतः कोई महान् योगी ही ईश्वर का स्मरण कर काल से बच सकता है; परन्तु तेरे इस भाले के सामने तो कोई भी शत्रु किसी भी दशा में नहीं बच सकता।

महाराजा बलवतसिंह (रतलाम)

—: गीत ४४ :—

कीधा खुवारी ठिकाणवारी आणिया सुमावां कोने,
छंडा दावा केही पंचहजारी छलूत।

माया अभ्र छाया रूपी ठिगारी जिहान मोये,
चापो छत्रधारी मोयो न जावे वलूंत ॥१॥

धरा गाडे तो भी आप मते आकुलावे धरा,
सूम थाका विचारा लुकावे भेली संच।
लछी भसीभूत सारां अमीरां भ्रमावे लारां,
पत्रा वालो धूत थारा न माने प्रपंच ॥२॥

करी राजा जरी जास तासां वाजराजां कासा,
आसा पूर पातां चीत दिलासा अपार।
मीढ रा डुलाया आथ तमासां मोहणी मंत्रां,
भूरो घणा हासा—खेल लूटावे भंडार ॥३॥

तागीत हीयरा मांण अदातां जावते ताळे,
नेत्रा ठाळे वारूवार संभाळे निधांन।
खांगीवंध मोजां ठाळे अखूट खजांनां खोले,
चाळेलागो आळेमाट ऊधमे चौगान ॥४॥

भाळे दीठ सुधा जठी आसागीरां भूक भागे,
आचां खटी सोभा जोस अथागे अरोड़।
वीसळेस वीस कोड़ दटी सो गमाई वागे,
राजा रीझ छंदा लागा धूपटी राठोड़ ॥५॥

(रच०—अज्ञात)

अर्थः—बादलों की छाया सदृश (क्षणिक) इस लक्ष्मी ने कितने ही भूमिपतियों को (स्वार्थ) से परेशान कर कृपण स्वभाव

के बना दिया, नाज़ नखरों से कई पंचहज़ारी (मनसब धारियों) को भी छल लिया। इस प्रकार इस (लक्ष्मी) ने समस्त संसार को मोहित करलिया; परन्तु पोषण कर्त्ता छत्रधारी बलवंतसिंह को मोहित न कर सकी।

कृपण व्यक्ति लक्ष्मी को संचित एवं उसे पृथ्वी में गाड़ २ कर थक गये। यह भी वहां पर बड़ी दुःख पाती हुई सब अमीरों को वश में कर अपने पीछे २ फिराती रहती है; परन्तु पर्वतसिंह का यह चालाक पुत्र इस (लक्ष्मी) के प्रपंच में नहीं आता।

हाथी, जरींनवस्त्र एवं घोड़े आदि देकर यह युवक राजा; कवियों की इच्छापूर्ति करता हुआ उन्हें आश्वासन देता रहता है। इस की समता रखने वाले राजाओं को तो इस लक्ष्मी ने मोहिनी मंत्र से मुग्ध कर चक्कर दे दिया; परन्तु यह (राठौड़ राज) चक्कर में न आकर) विशेष प्रसन्न चित्त से कोश लुटाने का खेल रचता रहता है।

कितने ही कृपण इस लक्ष्मी को गले में डालने के 'तावीज़' समान समझकर ताले में बंद कर रखते हैं एवं बार २ ताम खोलकर उसे देखते और सँभालते रहते हैं; परन्तु इस टेढ़ी पगड़ी बांधने वाले वीरने उमंग में आकर अक्षय खजाने खोल रखे हैं। उदारता के वशीभूत हो यह! खुले चौगान में हमेशा लुटाता रहता है।

यह राठौड़ राजा जिधर सुधा-दृष्टि डाल देता है, उधर इच्छुकों की अभिलाषा पूरी हो जाती है। इसके हाथोंने अपार जोश होने से एवं सतत दान देने के कारण शोभा प्राप्त करली है। चौहान राजा वीसल देव ने बीस करोड़ की सम्पत्ति जमीन में गाड़कर नष्ट कर दी; इस वीर ने तो प्रसन्न होकर लक्ष्मी को वितरित कर दिया।

महाराजा बलवन्तसिंह (रतलाम)

—: गीत ४५ :—

की कहणो नृपत ऊधरा करगां,
समझण रुपग गूणा सवाद ।
ओठम जग वलवंत आप रो,
अघलो जस कोते प्रथमाद ॥ १ ॥

चितरा विलंद उदारण चोजां,
झोकां माझां संघ झड़ ।
जस वालो गरवत पण जोतां,
प्रथवी वालो तुच्छ पड़ ॥ २ ॥

सासत पर-व्रत सिंघ सवाई,
पाणा आसत जोधपुरा ।
सुसबद रो परकर दीठा सुज,
धज ंधी सांकड़ी धरा ॥ ३ ॥

पो हो दत वल वधीयो चहुँ पासे,
दूजा केहर दसूं दस ।
मही पचास कोड़ (म) हँ महपत,
जोजत जोजन वधे जस ॥ ४ ॥

(रच० अज्ञात)

अर्थः— हे नरेश्वर वलवन्तसिंह ! तेरे दान देने को उठे हुए, हाथों के विषय में क्या कहा जाय। तू कविता के रस को जानने

चटपट समट वरत नट चाकत,
ऊलट पलट झट हाकत ईख ।
वहवे दुपट ऊपट नभ चटका,
साकुर सद गुटका सारीख ॥३॥

खेलत लियो दुवागां खोल र,
कूद अलोलर कीजी ।
तलफे गयो पटी पग तोलर,
डोलर मचक दरीजी ॥४॥

जमत नरत कुलटा छंद झटकी,
लाह उछट की आडी लीक ।
झड़क पांव पटकी झंपा जद,
अंत (ह) वर नटकी आरीक ॥५॥

खग धावां नह पूगे खड़तां,
ले टक छोह लखाई ।
दीधी डोर गुडी दो-दोखी,
दारू आग दखाई ॥६॥

(रच० दधिवाड़िया देवाजी)

अर्थः—वलवन्तसिंह के चित्त में स्थान पाने वाला यह माणक नामक अश्व छलांगे मार कर हिरणों तक पहुँचने वाला है। समुद्र के दूसरे तट (विदेश) तक इसकी प्रशंसा होती है। यह रास के कावू में रहने वाला और सिचाण (वाज की तरह का एक पक्षी) की तरह झपटने वाला है ॥ १ ॥

कूदने में यह घोड़ा मानों मशीन से बनाया गया हो, जल से उत्पन्न मच्छ की तरह तड़ फड़ाता है। उलटा सुलटा दौड़ने में मानो कांच का प्रतिविम्ब हो या विजली चमकी हो।

रस्सी पर चढ़े हुए नट की तरह यह घोड़ा अपने अंगों को बना कर उलटा सुलटा चलने वाला, ऊबड़ खाबड़ जमीन को भी यह बादल के टुकड़े की तरह पार करने वाला तथा सिद्धों द्वारा बनाई हुई गुटिका (जिसे मुख में रखने से जहाँ चाहे उड़ कर चला जाता है) उसी प्रकार उड़ने वाला है।

मस्ती करते हुए की लगाम में लगी हुई रस्सी को खोलते ही बेकाबू होकर कूदता एवं पैरों पर तुल कर इस प्रकार दौड़ता हुआ दिखाई देता मानो झूला चल पड़ा हो।

कुलटा के समान नृत्य करता हुआ यह घोड़ा इस प्रकार दौड़ता है, मानों लकीर खींच दी गई हो और पैर पटक कर इस प्रकार झपटता है, मानों परदे की ओट से एक दम नट निकला हो।

पक्षी उड़कर भी इस तक नहीं पहुँच सकते। इसे एक नजर से देखने पर मनुष्य प्रसन्न हो जाता है। यह इस प्रकार बढ़ता है, मानों पतंग को दुगुनी डोर दी हो, या बारूद में आग लगा दी हो।

राठौड़ बिहारीदास (मानोत)

—: गीत ४७ :—

धिखे धोम धूंवा रवण धरा पुड़ि धूजिया,
  झड़े चड़िया कटक ऊकटा काट।

कटे घोड़ा सुहड़ हुई आरिण विकट,
विहारी पांतरै केम कुलवाट ॥१॥
घार रव वाजि अंधार आतस धुवे,
चालिगा कारिमा धरम चूकौ ।
महिर हरि हुवा सव दीह मंगल मरण,
मांन रै आदि रहसु नहँ मूकौ ॥२॥
किलँव दल आविग्यै काल्हि हुवो जिकूं,
नवसहस दिमौ कूंपा निहालै ।
विघन ऊछाह वाधावि लीधौ वधै,
कुल तणा भाटकै पंथ कालै ॥३॥
अंत जीतौ कमँध खेम हर आभरण,
कलहि पूगौ जितौ रिमां कसियौ ।
पाट छलि ऊधरै वंस विरदां प्रगट,
वरे अछरां सुरांथानि वसियौ ॥४॥

(रच०- अज्ञात)

अर्थ:—(युद्ध क्षेत्र में) आग्नेयास्त्रों (तोपों आदि) से धूम छा गया, पृथ्वी काँपने लगी, एवं शत्रुसेना पीछे पड़कर अकाट्य वीरों एवं घोड़ों को काटने लगी। ऐसा भयंकर युद्ध छिड़ने पर भी वीर विहारीदास, अपने कुल-मार्ग को कैसे छोड़ सकता था ? (वह युद्ध में डटा ही रहा)।

जव तलवारों की खनखनाहट एवं आग्नेयास्त्रों के धूम से अंधेरा छा गया, तव कायर धर्मच्युत होकरयुद्ध-भूमि से चलते वने; परन्तु मानसिंह के पुत्र (विहारीदास) ने यह कहते हुए कि ईश्वर

कृपा से युद्ध—दिवस सबों के लिये मंगल प्रद है,—क्षत्रियों के आदि मार्ग को नहीं छोड़ा।

यवन-सेना को आती हुई देखकर वीर (विहारीदास),—"मैं इसे कल नष्ट कर दूंगा, जिससे मरु प्रदेश तथा कूम्पा के वंशज प्रसन्न हो जायेंगे"—कहता हुआ आगे बढ़ा और विपत्ति का सम्मान करते हुए कुलमार्ग पर कदम देकर तलवार चलाई।

(इस प्रकार) वह कुलभूषण खेमा का पुत्र (या वंशज), अन्त में विजयी कहलाया। जिन दुश्मनोंने उस वीर से कसकर युद्ध किया, उनसे वह भिड़ा और बाद में राज्यासन का रक्षक वह वीर, अपने वंश-विरुदों की रक्षा करता एवं प्रसिद्धि पाता हुआ अप्सराओं का वरण कर स्वर्ग में रहने लगा।

राजा बिठलदास

—: गीत ४८ :—

दली दळ भार अपार भुजां दिठि,
राव घणा दाहिणे रहे।
भलिम रथ पूरियो भलाई,
वामी धर वानेत वहे ॥१॥

सुत गोपाल न पूगा समवड़,
साहजिहां गल सबल सोहो।
पाण करे सारा यक पासे,
पासे यक अजमेर पोहो ॥२॥

हाकणहार सरीखो होवे,
उतरीतां चढतां अटक ।
बलिभरियो राजे यक बाजू,
कलि रहियो सारो कटक ॥३॥
हिन्दूराय निबाहि हिन्दुवा,
पाहि गाहि उजबकां परे ।
ताणि खँधार लेगयो ताई,
आणि पाणि मेलियो उरे ॥४॥
(रच०- भादा विहारीदास)

अर्थः—शाही सेनारूपी अपारभार से लदाहुआ जो सुन्दर रथ है, उसके जुए के दाहिनो ओर जूते हुए कितने ही राजा-गण हैं; परन्तु हे धनुर्धर वीर ! भलापन एक तुझमें ही है, जो तू उस रथ के बायें ओर जुत कर उसे (रथ को) आगे बढ़ा रहा है ।

शाहजहाँ की सेना के उस भार को अन्य सब प्रबल राजा-गण नहीं ढो सके और न तेरी समानता ही कर सके । जब रथ के एक ओर होकर सब जुते और बल करने लगे; तब हे गोपालसिंह के सुपुत्र ! अजमेर प्रान्त के निवासी ! अकेले तूने ही दूसरी ओर जुत कर बल प्रदर्शित किया ।

अटक तक जाने आने में जब वह सैन्य भार से लदा हुआ रथ दलदल (युद्ध-आपत्ति) में फँस गया, तब तूने उसके एक ओर जुत कर बलिष्ठ वृषभ एवं रथ-वाहक दोनों का काम किया ।

हे हिंदू-नरेश ! तूने हिन्दुत्व का पालन करते हुए उजबकदेशीय वीरों को कुचल कर शाही सेना को कंधार तक लेगया और सकुशल पुनः लौटा लाया ।

भगवानदास राठौड़:– (वाघोत, जेताउत)

—: गीत ४६ :—

भिड़णि जेम भगवांन असमांन अड़िये भ्रिगुट,
भार धरि भुजे गढ सनढ भेलै ।
दलां रा तिके रखपाल न्याइ दाखिजै,
महरि वधि भड़ा हूँ सार मैलै ॥१॥

अभिनमा प्रिथीमल जिही धरियै अवणि,
आवलां दलां वधि खल उथालै ।
भुजै बीड़ो तिके वहसि मारै भलां,
झूझ भर आवगो सीस झालै ॥२॥

जंगि जूपै धमल जाध लागां जिही,
जिके अरि लाख तिल मात जोवै ।
दलां सिरदार ताइ भलां कीजै दुझल,
हुवंतां दलां दल थंभ होवै ॥३॥

हेड़वे थाट अवियाट जैता हरे,
सारि के(........)मरण संसारि सीधौ ।
वाघरै रांम रा भीछ तेही वधै,
कमधि जुधि रमायण वियो कीधौ ॥४॥

(रच०—अज्ञात)

अर्थः—जो कोई वीर (युद्ध में) भिड़े तो उसे भगवानदास की तरह भिड़ना चाहिये, जिसने युद्ध समय अपना मस्तक आसमान से

जा लगाया और युद्ध भार को अपनी भुजाओं पर उठाते हुए दुर्ग का सजग वीरों सहित ध्वंस कर दिया। सच है, दल-रक्षक वही कहा जा सकता है, जो आगे बढ़कर योद्धाओं से शस्त्र मिलाता है।

नये पृथ्वीतल के योग्य वही वीर कहा जा सकता है, जो स्वामी की अनुपस्थिति में भी विपरीत (विरोधी) सेनाओं को नष्ट कर छिन्न भिन्न कर देता है तथा युद्ध के लिये प्रसन्न चित्त ताम्बूल (बीड़ी) ग्रहण कर युद्ध में भिड़ता हुआ साथियों से पृथक् ही अपना मस्तक (शिव को) अर्पित कर देता है।

वही भयानक वीर सेना का सरदार कहा जा सकता है, जो योद्धाओं से वृषभ के समान टक्कर लेता हुआ लाखों शत्रुओं को (भी) तिल सदृश समझता है तथा सेनाओं के भिड़जाने पर अपने पक्ष की सेना का स्तंभ बन जाता है।

जेता के प्रसिद्ध वंशज एवं वाघा के पुत्र वीर राठौड़ (भगवानदास) ने उसी (उक्त) प्रकार से शत्रु समूह को नष्ट कर दिया और महान् वीर के समान मर कर संसार में श्रेष्ठ कहाते हुए रामचन्द्र के समान नई रामायण रच दी।

राठौड़ भगवानदास-(दयालदासोत एवं कर्मसिंहोत)

—: गीत ५० :—

भगवांन जिही वे हथियैं भालो,
 अरियण घड़ मोहडे अनड़ ।
 आंहचि जिम तो राणे जुधि आवै,
 भलां कहावै महा भड़ ॥१॥

सुतन दयाल जेम चढ़ि साग,
जिणी आगै जीता रण जंग।
मारै दलि वालै तण मांझै,
भीछ तकै कहिजै अणभंग ॥२॥

कमधज निम अभिनमै कमसी,
नीग्रहि कमलि चढ़ंते नूर।
और सु तण मांमहे अणीए,
सांचा तिके बटा जै सूर ॥३॥

हदा हठी पड़ियाँ हाथू कै,
चावी जल मुरधरा चढ़ै।
कंदल करै ऊभरे कुलकित,
वर रहियो जांनियां वड़ै ॥४॥

(रच० —अज्ञात)

अर्थः—दोनों हाथों में भाला लिये हुए वीर भगवानदास ने पर्वतकाय होकर शत्रु-सेना को मोड़ दिया और युद्ध-भूमि में इस प्रकार आया जैसे तोरण की वन्दना करने के लिये दुलहा आया हो। (वास्तव में) ऐसे वीर ही महान् वीर कहे जाते हैं।

दयालदास के पुत्र (भगवानदास) ने पहले कई बार युद्ध में विजय प्राप्त की थी; वह शत्रुओं के सामने बढ़ कर दिल्ली की सेना को भगाता हुआ स्वयं नष्ट हो गया। कवि कहता है—ऐसे भयानक क्षत्रिय वीर ही अभंग वीर कहे जा सकते हैं।

नूतन कर्मसिंह राठौड़ वीर ने युद्ध रच कर अपने स्वयं के मुख को कान्तिमान कर दिया और शस्त्रों की अणियों के सामने अपने अंगों को बढ़ाता रहा। ऐसे क्षत्रिय ही सच्चे वीर कहे जाते हैं।

हृदा (सरदार या शार्दूलसिंह) का वंशज (भगवानदास) कई बार कराघात होने से धराशायी हुआ, जिससे नरु प्रदेश कान्तिमान हो गया। (इस प्रकार) अपने कुल-कर्तव्य का पालन करता हुआ वह दुलहा रूप वीर युद्ध में (अप्सरा का) वरण कर (साथियों से) बिछुड़ गया और बराती रूप अन्य साथी वापस लौट गये।

राठौड़ भोपतसिंह (गोपालदासोत, चाँपावत)

—: गीत ५१ :—

सुहरि साहि वाधारि सजि सारि वेढी मणै,
जोड़ अरिथाट अवियाट जाडौ।
उबैलण दलां निज खलां भांजण अभंग,
ओरियौ खेग रणतालि आडौ ॥१॥

निव दलां अणी जुधि धणी मोह मोहरै निवड़,
छरा ऊपाडि वेहथि छड़ालै।
कड़ै चड़ियां भड़ां घड़ां रोलण कमध,
कहरि असि मेलियौ थाटि कालै ॥२॥

विसरि फौजां उभै वीर हक वापरे,
जोध ज्यूँ कीध नहँ किन्ही जोड़ौ।
पालरै यालि भूपालि वाहां पलवि,
घातियौ कालि घमचालि घोड़ौ ॥३॥

मुहियड़ दलां सिंघ सुतन गोपाल मल,
भूजे भूपाल जुध भार भलिया ।
घरे सुरतांण वड़ करे साकौ विसवि,
वींद रिणि रहै जांनैत वलिया ॥४॥

(रच०—अज्ञात)

अर्थ:—मार काट करने वाले प्रचंडकाय वीर (भूपतसिंह) ने सशस्त्रसज्जित हो शाहा सेना के हरावल के अभंग शत्रुओं का नाश करने एवं स्वपक्षीय सेना को बचाने के लिये सवेग घोड़ा बढ़ाया और आक्रमण करने लगा ।

भाला ग्रहण करने वाले उस उन्मत्त राठौड़ वीर ने अपने स्वामी की सेना के हरावल में होकर यवन-सेना के हरावल से टक्कर ली और पीड़ा करने वाले शत्रु-समूह पर अपनी विघ्नकारी तलवार चलाते हुए हलचल मचादी ।

जब प्रलंबबाहु भूपतसिंह जो पाला का वंशज था. ने घमासान युद्ध में यमस्वरूप हो अपना घोड़ा आगे बढ़ाया. तब दोनों सेनायें (एक दूसरे की ओर) बढ़ने लगी एवं वीर हुंकार करने लगे . उस समय उस राठौड़ वीर की समानता दोनों सेनाओं में कोई भी नहीं करसका

(इस प्रकार) गोपालदास के पुत्र भूपतसिंह ने सेना के अग्रभाग में सिंह-सदृश दिखाई देते हुए अपनी भुजाओं पर युद्ध-भार और शाका (महायुद्ध करके बादशाह की सेना (दुलहन) का वरण (काबू में) किया एवं दुलहारूपी वह वीर रणशय्या पर सोगया । शेष बराती रूपी साथी लौट गये ।

राठौड़ भावसिंह (कूँपावत)

—: गीत ५२ :—

भड़ांरूप चाढ़ण वड़ा वेहड़ां भावसिंघ,
कळह रा थंभ न्याहै कहावै।
सदालग चाड जोधां तणी संकड़ै,
आवियौ जेम रिणमाल आवै ॥१॥

कान्हरौ कहै सुरितांण साम्हा कथन,
प्रथम कीजै जिकूं करौ पाछै।
असिमरां म्हांहरा पगां मुरधर अगै,
अमर रौ हसम मो परै आछै ॥२॥

तवे खगधार सिरि राह खत्रियां तणौ,
वहसि खेमाळ हर ऊभियै वाह।
पाट सू मेळतौ भीछ पतसाह रा,
पाट ऊखेळ तौ भिसण पतसाह ॥३॥

सामि ध्रम हाम संग्राम चाहै सिरै,
सूर गुर अखाड़ौ वडो सोधौ।
हेड़वे दळां दळ थंभ कूंपा हरै,
करै धर थंभ सुज मरण कीधौ ॥४॥

(रच०—अज्ञात)

अर्थः—वीरों की शोभा बढ़ाने वाला एवं युद्ध-समय दृढ़ स्तंभ स्वरूप होकर सेनाओं को नष्ट करने वाला वीर भावसिंह, जोधा के वंशजों में आपत्ति पड़ने पर सदा की भाँति चढ़ाई कर रणमाल की तरह आ पहुँचा।

कान्हा का पुत्र (भावसिंह) बादशाह से कहने लगा, कि जो तुम्हें कत्ल करना हो. उसे आज कर के दिखाइये (हम डरने वाले नहीं हैं)। हमारी तलवार के बल पर ही सारा मारवाड़ स्थित है और अमरसिंह का गौरव भी हम पर ही निर्भर है।

यह कहकर उस खेमा के पौत्र (या वंशज) ने हँसते हुए क्षात्रमार्ग पर अग्रसर हो दोनों हाथों से तलवार उठाई और शाह के भयंकर वीरों को पृथ्वीपर गिराते हुए, तख्त छुड़ा कर शत्रु बादशाह को भगा दिया।

स्वामिधर्म-पालन तथा स्वामी (राठौड़ अमरसिंह) के द्वारा आरंभ किये युद्ध को, श्रेष्ठता देते हुए उस वीर-गुरु के समान एव कूपा के दलस्तंभरूपी वीर वंशज ने सेना को विदीर्ण कर पृथ्वीपर विजय स्तंभ स्थापित कर श्रेष्ठ मृत्यु प्राप्त की।

राठौड़ भावसिंह (कान्हात. कूँपावत)

—: गीत ५३ :—

आचारि अघट तरुवारि असङ्कित,
भलां भलौ चढियौ भरणि।
कूँपा वडिम अभिनमौ कूंपौ,
भावसींघ दाखै भुवणि ॥१॥

अभंग तियागि खागि अतुली वल,
परियां रा धारीयै पण।

निभै सार निवहै नवकोटां,
तिके आचरण कान्ह तण ॥२॥

भड़ां किमाड़ गै घडा भेळे,
कटकां वधे वधारण कीति ।
मुह रावतां तणी राउ मारू,
रिणमल हरौ न चूकै रीति ॥३॥

खत्री अरेह वीटियौ खत्रवट,
खेम कलोधर चीति खरै ।
कुल ऊजला तणा राउ कमधज,
क्रत मारग ऊजला करै ॥४॥

(रच०—अज्ञात)

अर्थः—वीर भावसिंह कूंपावत (राठौड़), नूतन कूम्पा कहा जाता है। इसके द्वारा दिया गया दान अक्षय, एवं खड्गाघात निर्भीक होते हैं, जिससे यह वीर, श्रेष्ठ वीरों में माने जाने योग्य है।

कान्हा का पुत्र वीर (भावसिंह) राठौड़, अपने पूर्वजों के समान ही दृढ प्रतिज्ञ, अभंगत्यागी, महा पराक्रमी, खड्गधारी एवं सदाचारी है।

रणमल का वंशज (भावसिंह) राठौड़, योद्धाओं के प्रति कपाटस्वरूप, गजसेना का नाशक, सेनाओं में आगे बढ़ने वाला एव यश को फैलाने वाला है। यही राठौड़, समस्त रावत-पदधारियों का मुखिया एवं अपनी वंश-मर्यादा को नहीं भुलाने वाला है।

खेमा की कला को धारण करने वाला (वंशज) राठौड़ क्षत्रिय वीर (भावसिंह), असीम क्षात्रवट (क्षत्रियत्व) धारण करने वाला एवं हृदय से सच्चा (वीर) है। यह अपने उज्ज्वल कुल को अपनी कीर्ति से और भी उज्ज्वल करता रहता है।

राठौड़ महाराजा भीमसिंह (जोधपुर)

—: गीत ५४ :—

क्रिरण ऊगती भती सारीर व्रत परस कला,
छितपती दूसरां तणो छोगो।
वखत कामत छती वणायो विधाता,
जस रती भीम जोधांण जोगो ॥१॥

आगमण अंगरी धनो आपायता,
लंगरी वखाणे सरब लोकी।
आवियो पामंडा देर ऊभावरो,
चांमडा हुकम सिणंगार चोकी ॥२॥

त्रिजा वखतेस अगजीत सूं त्रिजाई,
वड वडा विरद खाटण विनोदी।
दीपियो हींदुवां भांण जग दतारी,
गरजीयो फता री आंण गादी ॥३॥

नरां दावागिरा पाधरे नमासी,
पर धरा जमासी समंद पाजा।
वखत जोधांण राखे सरम वाठवड़,
राठवड़ भीम छक भीम राजा ॥४॥

(रच०—अज्ञात)

अर्थ:—हे भीमसिंह राठौड़ ! सूर्य-किरण के समान कला (तेज) प्राप्त कर तू दूसरे छत्रधारियों का छोगा कहा जाता है। ब्रह्माने अच्छी घड़ी में तुझ चमत्कारी को रचा. जिस से तू यश का प्रेमी और सब में योग्य माना गया।

हे वीर तेरे पराक्रम को धन्य है। सभी तुझे लंगरी (पृथ्वी-राज रासौ में वर्णित पृथ्वीराज का सामंत लंघरीराय या-लंगरधारी "लाज की शृङ्खला धारण करने वाला") कहते हैं। तू चामुण्डा (देवी) के आदेश से खड़ा होकर शृङ्गार चौकी (चबूतरा जहाँ राज्याभिषेक के लिये सभा की जाती है) पर आया।

हे उदारमना हिन्दुओं के सूर्य ! तू विजयसिंह तथा बख्तसिंह जैसा विजयी हो कर उनसे भी बड़े २ प्राचीन विरुद धारण कर फतहसिंह के आसन पर आसीन हो कर गर्जना करने लगा ॥ २ ॥

हे राठौड़-राज भीमसिंह ! तू तो वास्तव में (महाभारत में वर्णित) भीम के समान है। बहुत से विरोधियों को तू सीधा करके झुका देगा। समुद्र तट तक पराए भू-भाग पर अधिकार करेगा और इस जोधपुर के तख्त की लज्जा बनाए रक्खेगा।

महाराज भीमसिंह राठौड़ (जोधपुर)

—: गीत ५५ :—

कर ग्रहीयां भीम प्रथी सिर कमधज, निकलंकी अंक सुधा-निवास,

वधते तेज स कोई वांदे, बाला चंद जही बाणास ॥१॥

वांकम तन धर वखत विजाई, महि मारण मांडण ब्रहमंड,

खांडा चंद जही तो खांडो, खांडोला धोखे नव खंड ॥२॥
ओते धरे फता रा चक्र उत, माथै ऊधारियो महेस,
बीज तणा ससि खडग बराबर, असपत न्याय करे आदेस ॥३॥
पह उजवाल निहाल सुकल पख, नर रूजगार तणो निरवाह,
दिन दिन तेज सवायो देखे, रूक हूँत नमिया दोयराह ॥४॥
(रच०—अज्ञात)

अर्थः—हे राठौड़ भीमसिंह! तेरे हाथ में ग्रहण की हुई तलवार चन्द्र-तुल्य होते हुए भी निष्कलंक है। इस बाल चन्द्रमा रूपी तलवार को तेज प्रसारित करती हुई देख कर सब इसकी वन्दना करते हैं॥ १॥

हे दूसरे ही बख्तसिंह! तू बांकापन धारण कर पृथ्वी पर मृत्यु को बसाकर ब्रह्माण्ड (ब्रह्मलोक) की शोभा बढ़ाता (शत्रुओं को ब्रह्मलोक में बसा देता) है। खण्डित (द्वितीया) के चन्द्र के समान खड्ग धारण करने से नवों खण्डों का मानव-समाज तेरी वन्दना करता है॥ २॥

हे वीर! तेरा खड्ग (विष्णु) के चक्र का अवतार धारण कर विश्व विजयी होने के लक्षणों वाला है। अतः नृप-समूह उसे मस्तकपर चढ़ाता है। यह (खड्ग) विद्युत एवं चन्द्रमा की समानता करने वाला है अतः बादशाहों का इसकी वन्दना करना उचित ही है॥३॥

हे राठौड़ वीर! तेरा यह खड्ग राजाओं को उज्ज्वलता देने वाला शुक्ल पक्ष के (चन्द्रमा) तुल्य है। इसीलिए इसके दर्शन मात्र से लोगों का पोषण होता है (चन्द्र दर्शन से लोग सुखी रहते हैं, उसी प्रकार इसे देखने पर लोग सुखी रहते हैं)। इसकी दिनों दिन तेज वृद्धि (शुक्ल पक्षीय चन्द्रमा के समान कला-वृद्धि) देखकर दोनों दिन (हिन्दू यवन) इसकी वन्दना करते हैं॥४॥

———

राठौड़ मनोहरदास

(उदैभाणोत एवं भारमलोत)

—: गीत ५६ :—

जीवत सिभ जोध जैत्र हथ जुधि,
सारे अरि भांजणा सुज।
पूजै तिणि देसौत वडा पह,
भलां मनोहर तूझ भुज ॥१॥

आखाड़े जीपणा अणकळ,
भुज लगि सत्रहर मछर भर।
बाळ धमळ भूपाळ बिरद घण,
करै सु अरधै तूझ कर ॥२॥

सांचौ देख भांण समो भ्रम,
भुवणि दिखाळ एणि भति।
पाड़े खळां कमा दूजा पिडि,
पाड़ि ऊपड़ियौ बिरद पति ॥३॥

(रच०— अज्ञात)

अर्थः— हे मनोहरदास ! तू जीवित शुंभ दानव-समान है। तेरे हाथ युद्ध में विजयी हैं। तू अच्छे शस्त्रों से शत्रुओं को नष्ट कर देता है। इसीलिये जितने भी बड़े २ देशाधिप हैं वे तेरी भुजाओं की पूजा करते हैं।

हे वृषभ सदृषवीर के सुपुत्र नरेश ! तू युद्धरूपी अखाड़े में निष्कलंक वीरों को जीतने वाला और मस्ती में आकर अपनी भुजाओं

के बलपर शत्रुओं से भिड़ने वाला है। इसीलिये विशेष विरुदधारी राजागण भी अपने हाथों से तेरे हाथों को पूजते हैं।

हे वीर तू दीखने में भाण (व्यक्ति विशेष) सदृश था और उसी के अनुरूप संसार के समक्ष बल-प्रदर्शन भी किया शरीर से तू कमा (वीर विशेष) के समान होकर शत्रुओं को धराशायी करता हुआ स्वयं धराशायी हुआ और अपने को विरुदों से अलंकृत किया।

राठौड़ मनोहरदासः- (वीटलदासोत)

—: गीत ५७ :—

वडम वीटियौ मनोहर वडा समहर वरण,
करग त्रै राह् हरां मुहर नामौ करण।
अतुल् बल् विरद दूदा तणा आवरण,
अणी रांणा दल् सुरभरा आभरण ॥१॥

हला आगल् सवल् खलां अग्रियामणौ,
धाइ धण दल् मिल् तेम सूरत धणौ।
ऊभियौ बाहेर पर-चांड काजि आवणौ,
तू'ग अणभंग जग जेठ वीटल तणौ ॥२॥

हेड़िजे गौधड़ा धूणिजै वैर हर,
हालिजै खत्रीध्रम तणा राठौड़ हर।
धणी धुजि मेड़ता थंभ मेवाड़ धर,
हाथ भारत्थ जै पाथ जैमाल हर ॥३॥

गह चडे द्वारि जस त्रंबयल गड़गड़ै,
उवर फाटै सुणे अरी धड़ ऊजड़ै।
पेखि आचार इनि राउ विसमै पड़ै,
चड़ै दिन पूरि तिम भरण मोटा चड़ै ॥४॥

(रच०– अज्ञात)

अर्थ:— हे दूदा-वंश के लज्जा-रक्षक वीर मनोहर तू वड़प्पन रखने वाला (स्वाभिमानी). वड़े २ युद्धों में विजय पाने वाला, खड्ग-धारी राजवंशजों में से आगे होकर युद्ध में यशस्वी होने वाला, महा-वलशाली, महाराणा की सेना के अग्रभाग में रहने वाला तथा मरु-प्रदेश का आभूपण है।

हे विट्ठलदास के वशज (या पुत्र) ! तू पृथ्वी की रक्षा के लिये अर्गला स्वरूप है, शत्रुओं पर मेघ की तरह घुमड़ने वाला, सेना में विशेप शस्त्राघात होने पर भी वीरता रखने वाला, दूसरों पर आई हुई आपत्ति को टालने वाला, वीर समूह में अभंग माना जाने वाला और वड़ा कहाने वाला भी तू ही है।

हे जयमल राठौड़ के वंशज ! तू गजसेना को विदीर्ण करने वाला, शत्रुओं को हिला देने वाला, क्षात्रधर्म पर चलने वाला और युद्ध में पार्थ के समान (प्रलंव) वाहुवाला है। (इसी प्रकार) मेड़ता के स्वामी के लिये ध्वजारूप एवं मेवाड़ भूमि का स्तंभ (आधार) भी तू ही है।

तुझे देखकर तेरे द्वार को गर्व होता है, तेरे यश के नगारों की गड़गड़ाहट सुनकर शत्रुओं के हृदय विदीर्ण हो जाते हैं और उनके शरीर नष्ट होते दिखाई देते हैं। तेरे रहन-सहन को देखकर अन्य राजा गण चकित हो जाते हैं। जैसे २ तेरा भाग्योदय होता है वैसे २ तू वड़ों २ का पोपण करता रहना है।

राठौड़ महेशदास (दलपतोत, राजावत)

—: गीत ५८ :—

मोटा क्रित करण मालहर मंडण,
वै वीरति मोटिम लघु वेस ।
कुलि मोटै दीटै नवकोटौ,
मौटा व्रिद धारियै महेस ॥१॥

ऊँची तांण अचड़ ऊबारण,
घाव वाहण सूर तन घणा ।
दलां सनाह चौंड रज दूजौ,
तूंग अभंग दल साह तणौ ॥२॥

खागे वड़ा प्रवाड़ा खाटण,
खेड़ ऊजालण खत्री सखोध ।
जैत जुवार वडा छल जागण,
जोधां सोह चढावण जोध ॥३॥

कर सह विधी सयल सिरि कीधा,
साराहै तै मनव सुरु,
पाट ऊधोर प्रगट पतसाहां,
गंग कलोधर खत्रि गुरु ॥४॥

(रच०—अज्ञात)

अर्थः— हे मरुदेशीय महेशदास ! तू बड़े २ कार्य करने वाला और मालदेव के वंशजों की शोभा है। अल्पायु होते हुए भी तू भारी

वीरता के मार्ग पर विचरण करता है। तू बड़े कुल में देदीप्यमान होकर बड़े २ विरुद प्राप्त करता है।

हे दूसरे ही चूँडा! तू (दूसरे पर) (विपत्ति आने पर हठ पूर्वक (उन्हें) बचाने, विशेष वीरता पूर्वक शत्रुओं पर) आघात करने, सेना के लिए कवच के समान और शाह की सेना में उत्तुंगकाय अभंगवीर माना जाने वाला है।

हे क्षत्रिय योद्धा! तलवार के बल पर तू बड़ी ख्याति प्राप्त करने वाला, युद्ध कर अपने पूर्वजों के स्थान को उज्ज्वल करने (पवित्र करने) वाला है। तू विजयी, वन्दनीय और जोधा के वंशजों की शोभा बढ़ाने वाला है।

हे गांगा की कला को धारण करने वाले वीर! तू तो क्षत्रियों का गुरु-तुल्य है। तूने सब के सिर पर अहसान कर दिया। अतः प्रारम्भ से ही सब तेरा प्रशंसा करते हैं। तू अपने स्वामी के सिंहासन का रक्षक है, यह बात बादशाहों तक को ज्ञात है।

महेशदास (सूरजमलोत, चांपावत)

—: गीत ५६ :—

चढियौ परमाणि अभिनमां चांपा,
निज ए कथ आदि लग नरेस।
माथै छत्र धरिजै राव मारू,
मोटा मोटिम चढै महेस ॥१॥
जैत जुवार दिली जोधाणे,
भड़ मानाणो मछर भर।

आंपे सूरिजमाल अंगोभव,
वड़ां वडाई वीर वर ॥२॥
दिढ धर-थंभ जैतमल दूजा,
पाह भगत संनाह पह ।
पै जिम प्रभत ऊजला प्रिथमी,
सत पुरुसां वाधै सगह ॥३॥
कुल अजुवाल वडाला कमधज,
सूरांगुरू अरधियै सुज ।
मुरधर तणा कलोधर रिणमल,
भर धरियै सोहिया भुज ॥४॥

(रच०—अज्ञात)

अर्थ:—हे राठौड़ वीर महेशदास ! तू नूतन चांपा है। राजवंशजों के लिये कहाजाता है, कि छत्रधारण करना एवं बड़ा कहाना उसी के लिये सार्थक है जो (वास्तव में) बड़प्पन रखता हो, और तुझ पर ये लक्षण फबते हैं।

हे सूरजमल के आत्मज ! तू श्रेष्ठ वीर एवं प्रमत्त योद्धा है। इसीलिए दिल्ली तथा जोधपुर के शासक तुझे विजयी वीर मानकर तेरा सम्मान करते हैं। वैसे तू स्वयं भी अपने पूर्वजों के समान ही बड़प्पन लिये हुए है।

हे वीर ! तू दूसरा ही जैतमल है। इस पृथ्वी का दृढ़स्तंभ, राज्य सिंहासन का भक्त एवं स्वामी के लिये कवचरूप तू ही है। तेरे सदृश प्रभुतावाले वीर ही इस पृथ्वी पर उज्ज्वल कहे जाते हैं और सबों के समक्ष अपने सत्पुरुषाओं की ख्याति में वृद्धि करते रहते हैं।

हे रणमल की कला को धारण करने वाले एवं महान् योद्धाओं द्वारा पूजे जाने वाले तथा राठौड़ों में महान् कहे जाने वाले वीर ! तू कुल को उज्ज्वल करनेवाला है। तेरी बाहुओं पर ही मरुदेश का भार स्थित है।

महाराजा मानसिंह (जोधपुर)

—: गीत ६० :—

मांटी पणो आडबारां भड़ां धकारां करारां मेल,
धीबवा दुधारां भाला आटी पणै धींग।
आयेबागी थारा भुजां तणै माथै दूजा अजा,
सारा रायेतांन तणी राजी मांनसींग ॥ १ ॥

दताला उबेड़ जाड़ा भूरा डाढेराव डाकी,
देला मार पांतिया खुराकी खलां पाथ।
आप राखी कजाकी आवगी राजा अणी आखी,
प्रथीनाथां तणी नाकी भुजां प्रथीनाथ ॥ २ ॥

हकालिया केहरी गमांनवाला वगां हकां,
रारिया भभंकां क्रोध डका वंबी रोड़।
गजां काला मोड़वाला रखै तूं दूसरा गजा,
जोड़वाला भड़ां री मरोड़ जाड़ी जोड़ ॥ ३ ॥

लखां गै वतीस थोका मोज रा फूलांणी लाखा,
सूर चन्द जेतेंकीत राखा भोम संभ।

मान सींग ताखा थारा भुजांडंडा तणै माथै,
आखा हींदूथान वाला थटाणा आरभ ॥ ४ ॥

(रच० - अज्ञात)

अर्थः— हे मानसिंह ! तू विरोधियों को युद्ध में खड्ग एवं भालों द्वारा नष्ट करने के लिए पुरुषत्व और आडम्बर से छके हुए करारे वीरों को, रखता है। हे दूसरे ही अजीतसिंह ! तेरी ही भुजाओं पर सारे राजस्थान की बाजी ठहरी हुई है ।

हे युवक नरेश ! तू हाथियों के जबड़े चीरने जैसा और वाराह के समान भयानक है। अर्जुन के समान तू शत्रुओं और उनके साथियों को नष्ट करने वाला है। अन्य राजाओं ने अद्‌भुत सैन्य-भार को दूर धर दिया, उसे तूने अपनी भुजाओं पर उठा लिया।

हे गुमानसिंह के पुत्र ! तू तो दूसरा ही गजसिंह है। हुंकार होने पर तू सिंह तुल्य वीरों को ललकार कर आगे कर लेता है। युद्ध के समय क्रोध में आकर नक्कारे बजवाता और श्याम वर्ण हाथियों के मुख मोड़ देता है। हे वीर ! तेरे समान तेरे वीर साथी भी ऐंठ कर रहने वाले हैं।

हे तक्षक तुल्य मानसिंह ! तू लाखाफूलाणी (एक विशेष उदार) की तरह उमंग में आकर लाखों हाथी पुरस्कार में देता रहता है। अतः भगवान् शिव, तेरी कीर्ति जब तक सूर्य और चन्द्र हैं, तब तक बनी रक्खे। क्योंकि सारे हिन्दुस्तान का कार्यभार तेरी भुजाओं पर आ ठहरा है।

महाराजा मानसिंह (जोधपुर)

—: गीत ६१ :—

तेजालां खैग ग्रवै बड त्यागी, इम मदवाला उमग उर ।
कमधां नाथ रंक गुर करतां, गढपतियां चो थियो गुरु ॥ १ ॥

सिवका जवहर गांम समापे, करतै उठण रा कुरब ।
सुतन गुमांन हुए कवि चो सिष्य, सिष्य कीधा भूपाल सब ॥ २ ॥

देख दिखाते गजन दूसरा, पह आचारां तणां प्रमांण ।
दूर्थी नू श्रीफल तैं देते, पहां थियां सिर दीधा पांण ॥ ३ ॥

चूंडाहरा तुहारा चेला, बंस छत्तीस बधंतै बांन ।
सूरां गुर गाढां गुर सुकवी, महाराजां रायां गुर मांन ॥ ४ ॥

(रचः— कविराज बांकीदास)

अर्थः— हे राठौड़ नरेश उदारता के साथ उमग में आकर तूने वेगवान घोड़े तथा मतवाले हाथी देकर मुझ बांकीदास को अपना गुरु बनाया और तू सब दुर्गाधिपों का गुरु बन गया ।

हे गुमानसिंह के पुत्र ! तूने मुझ कवि को पालकी; जवाहिर, ग्राम, और ताजीम दी तथा मेरा शिष्य बनकर तूने सब राजाओं को अपना शिष्य बना लिया ।

हे दूसरे ही गजसिंह ! तूने राजाओं के व्यावहारिक ज्ञान को समझा और दूसरों को भी समझाया । मुझे गुरु मान नारियल भेंट में दिया । तूने अन्य राजाओं के मस्तक पर हाथ रख दिया (उनका गुरु बन गया) ।

हे चूंडा के वंशज मानसिंह ! छत्तीस ही वंश के क्षत्रिय तेरे शिष्य बने, उनकी शोभा वृद्धि पर है । तू दृढ वीरों, कविता रचने वालों, राजाओं तथा महाराजाओं का गुरु-तुल्य है ।

राठौड़ रतनसिंह (जोधा)

—: गीत ६२ :—

वारण भरड़ीयो दरबार विचाले,
कायरां पड़े करारी।
बागा—हरे आगरे बाही,
कँवरपणोज कटारी ॥ १ ॥
हूँकल पोलि उरड़ियो हाथी,
निछटी भीड़ि निराली।
रतन पहाड़ तणे सिर रोपी,
धूहड़िया धाराली ॥ २ ॥
पाचूं सह वहंता पोखे,
सांई दरगाह सोधे।
सिंधुर तणो भ्रमुंडे सुजड़ी,
जड़ी अभनमे जोधे ॥ ३ ॥
देम महेम अँजसिया दोन्यौ,
रोद खत्री भ्रम रीधो।
वोहिज गयँद वखाणे आंणे,
डांणे लागे दीधो ॥ ४ ॥

(रच०—दुरसा आढ़ा)

अर्थः—एक समय जब आगरा में शाही दरबार हो रहा था, तब एक हाथी मस्ती में आगया। उस समय कायरों पर विपत्ति आई हुई देख बाबा के पुत्र (या वंशज) ने युवराजपन में ही उस (प्रमत्त) हाथी पर कटारी का वार कर दिया।

जब चिंग्घाड़ता हुआ पर्वत सदृश (भीम काय) हाथी शाही द्वार पर झपटा, तब रत्नसिंह राठौड ने उस (हाथी) के मस्तक पर कटारी भौंक दी।

जब काजी मुल्ला आदि भाग कर मस्जिद की आड़ लेने लगे, तब दूसरे ही जोधा-सदृश वीर (रत्नसिंह) ने उस प्रमत्त हाथी के भ्रसुंड पर कटारी चला दी।

इस प्रकार वीर रत्नसिंह के कटारी का वार करने पर देश और मृतवीर महेशदास जो उस (रत्नसिंह) का पूर्वज था, को प्रसन्नता हुई एवं बादशाह ने उसके क्षत्रियत्व पर प्रसन्न होकर प्रशंसा करते हुए उस प्रमत्त हाथी को उसे दे दिया।

राठौड़ रत्नसिंह (राजसिहोत, कूँपावत)

गीत—६३

मेलण रणताल अभिनमो मांडण,
 करण अचड़ ऊभियै करि।
रतन अरेह समोभ्रम गाजड़,
 हुवे समंद्र काइ करन-हरि ॥ १ ॥
 बधे बरेत फौज बीरारसि,
त्रिजडां बलि साहस अतुलि।
 नग नीपजै अमोलिक नामै,
कै गिखि कै राठौड़ कुलि ॥ २ ॥
 खल खेगरण खगै खेड़चो,
खत्रियां—गुरु खत्रवाट खगै।

महि सिणगार मांनिजे महियलि,
हरकासिप खेमाल-हरो ॥ ३ ॥
धन तैं मन मडलीक कलोधर,
मोड़ण गैं-थड़ निभै—मण ।
वडे सुजसि रखपाल वडालौ,
राइजादौ राजै रयण ॥ ४ ॥

(रच०—बारहठ नरहरदास)

अर्थः—हे रत्नसिंह ! तू लगातार वार करने में नूतन माँडा (व्यक्ति विशेष) है। युद्ध के समय तेरे दोनों हाथ चलते हैं। राजसिंह के समान तेरे गुण असीम हैं। हे कर्ण के वंशज ! गम्भीरता में समुद्र तेरी समानता नहीं कर सकता।

शत्रुओं से सामना करते समय तुझ में वीर रस की वृद्धि हो जाती है। हे खड्गधारी बलवान ! तेरा पराक्रम अतुलनीय है। तेरे जैसा अलौकिक मानव या तो ऋषि-कुल में या राठौड़ कुल में ही उत्पन्न होता है।

हे खेमा के वंशज राठोड़ वीर ! तलवार से तू शत्रुओं को काट देता है। तेरा क्षात्रवट पक्का और तू क्षत्रियों का गुरु-तुल्य है। संसार तुझे पृथ्वी का शृंगार मानता है तथा सूर्य से तेरी तुलना की जाती है।

हे माँडा की कला को धारण करने वाले राज-वंशज रत्नसिंह ! तेरा मन प्रशंसनीय है। निर्भयता पूर्वक तू गज-सेना को भगा देता है। तेरा यश महान और तू बड़ों का रक्षक है।

राठौड़ रामदास (मेड़तिया, चाँदाउत)

—: गीत ६४ :—

पत वीर दादौ जियै आप एकाधपति,
ध्रग रखपाल झूझै अध्रायौ ।
ऊनगे असिमरे ध्रमे छिवतो अरसि,
आवरै सामध्रमि राम आयौ ॥ १ ॥
वडौ राठौड़ सुजि वडा जोवे विघन,
प्रथमि जग जेठ पूरौ प्रवाड़ै ।
दिजां छल देश छल तणा सुरिन्यणा दल,
चंदरै हैड़िया हियै चाड़ै ॥ २ ॥
अभंग उपड़ांखियै रिदै धरियां अनँत,
नाखियां करे पाखां नत्रीठा ।
मींधुरां हैमरां नरां माथै समरि,
दुजड़ कर खिवंतां सुरे दीठा ॥ ३ ॥
त्रिप ध्रहण मोखयण रमण आगण विचि,
मारकौ मांक्षियां वधे मिलियौ ।
खलां करि खेग रण अंत साखी अरण,
भांजि जामण मरण जोति भिलियौ ॥४॥

(रच०— अज्ञात)

अर्थ.- रामदास यह कहता हुआ बढ़ा कि पहिले मेरा दाद वीरमदेव एक ही धरा-रक्षक नरेश्वर हुआ, जो उमड़ कर युद्ध करत रहा। उसी का पौत्र मैं स्वामी-धर्म को धारण करने वाला हूँ। उठी हु

तलवारों द्वारा पृथ्वी को आच्छादित करता हुआ मैं आगया हूँ। हे शत्रुओं ! युद्ध के लिए सामने आजावो।

इसके पश्चात् श्रेष्ठ वीरों में बड़े कहे जाने वाले, पहले से ही संसार में विख्यात और द्विज एवं देश के रक्षक चांदा के पुत्र राठौड़-वीर ने विपत्ति को सामने आया देखा। शाही सेना पर आक्रमण कर उसने उसके हृदय को विदीर्ण कर दिया।

उस अभंग, उन्नत स्कंधधारी वीर ने हृदय में ईश्वर का ध्यान किया और अपने पाखरधारी घोड़ों को सवेग बढ़ाया। युद्ध में हाथियों, घोड़ों एवं सैनिकों के मस्तक पर चमचमाती हुई उसकी तलवार को देवताओं ने भी देखा।

रणस्थल में युद्ध—क्रीड़ा कर उसने बन्दी ब्राह्मणों को मुक्त करा दिया। वह शत्रु-संहारक वीर, प्रमुख वीरों से भिड़ पड़ा और शत्रुओं को काट दिया, इसका साक्षी सूर्य है। वह वीर आवागमन से मुक्त होकर परम ज्योति में मिल गया।

राठौड़ रामसिंह

—: गीत ६५ :—

वदे राम वरियांम संसार रजपूत वट,
लोह पागार सुंडाहला लोथ।
ऊगड़ी मामां अणी ऊपरे ग्रिसण उर,
जड़े जमदाढ तूं असिनमा जोध ॥१॥

कमा रा मोह अण-बीह भामी करां,
सूर तन वणा भोगे ती सराहे।

आप अँग लोह लागां पछो प्रीसण उर,
वहेते तु हिज जमदाढ़ वाहे ॥२॥

अभनमा वाघ उडंड आखाड़मिध,
वधे देसोत नवखड वाला।
कहर रूतो करग मारि कट्टारियां,
करे तूं एवड़ी अचड़ काला ॥३॥

वड़ा विरदेत करमेत रा वीर वर,
अजसे दुरग जोधांण धर ऐत।
फरे फिरत अणी सावल फलां,
छलण हारां गिलै तुहिज छत्रेत ॥४॥

(रच०–नरबद)

अर्थः—हे रामसिंह! तेरे क्षात्रवट की संसार सराहना करता है। तू शस्त्रों की थाह लेने वाला और गजसेना को कुचल देने वाला है। शत्रु–सेना के विशेप आक्रमण करने पर, शत्रु के हृयय में कटार भोंक देने वाला वीर तू ही है।

हे कर्मसेन के वंशज! तू निर्भीकसिंह के समान है। तेरे हाथों का का सबको विश्वास है। विशेप वीर भी तेरे प्रशंसक हैं। अपने शरीर पर शस्त्राघात होने पर भी तू शत्रु की छाती में कटार का वार करने वाला है।

हे नूतन वाघा! तू रण–दक्ष और उद्दण्ड वीर है। नवों खण्डों के देशाधिपों से तू आगे बढ़ने वाला है। युद्ध में रत हो हाथ से कटार का प्रहार करने और अक्षुण्ण ख्याति प्राप्त करने वाला एकमात्र तू ही मस्ताना वीर है।

अर्थः – राठौड़ वीर रूपसिंह महान् मर्यादापालक एवं शाही सेना के अग्रभाग में रहने वाला है। विजय का भार इसीकी भुजाओं पर निर्भर है। धर्म का धुरा यही धारण करने वाला है। यह केशरीसिंह का पुत्र दूसरा ही केशरी होकर राठौड़ों के मस्तक की शोभा (सिरमौर) है।

इसका वट खाता हुआ अश्वारोही समूह आठवें समुद्र के समान है। यह जिस शत्रु-दल पर क्रुद्ध होता वह उस में डूब जाता है। इस-पर चारों ओर से श्वेत चमर डुलते रहते और इस नरेश के मस्तक पर छत्र सुशोभित होता है।

भारमल के अंशधारी इस वीर में, स्तंभरूप होकर गिरते हुए आकाश को रोकने की शक्ति है। यह दिल्ली राज्य का रक्षक होकर युद्ध में महान शत्रुओं को नष्ट कर देता है। इसके यश के नक्कारे सदा वजते रहते हैं और प्रसिद्ध युद्ध करने वाले राजाओं के लक्षण इस पर फबते हैं।

इस दूसरे ही मालदेवका पंचतत्वमय पुतला पवित्र आचरणों वाला है। यह प्रह्लाद के समान ईश्वर की विशेष आराधना एवं पूजा करता रहता है। इसकी भुजाओं पर वंश-भार एवं ललाट पर यश का तिलक तथा मस्तक पर मेघाडंबर (छोटा छत्र) शोभा देता है।

राठौड़ रुक्मांगद (करणोत, राजाउत)

—: गीत ६७ :—

मोजां वण महण भंग—हर मंडण,
ध्र धारण धरियै खत्र धोड़।
रावां वडां तणी रुखमांगद,
रीतु उजाले राव राठौड़ ॥१॥

बासण घण सेव वैरागार,
वडा त्रिविधि डोहण घण थाट।
सलखा सहि अभिनमौ सकतौ,
सोह चढावै करन सुजाट ॥२॥

अवि रच अतव अभंग अतुली बल,
वड खल वहण उवारण वात।
जोधां रिणमालां जग जेठी,
छल जागै चौंडा हर छात ॥३॥

सकता माल गंग वाघा सक,
रट—रामण जोधा रयण।
दीठै तूं दीसै कुल दीपक
अभंग वडाला आचरण ॥४॥

(रच०—अज्ञात)

अर्थः—हे वृहद् क्षत्रिय राठौड़ रुकमांगद ! तू गांगा के वंशजों की शोभा है। तेरी उमंगें तरंगित समुद्र के समान और विचार स्थिर हैं। तू राजाओं की रीति को पवित्र करने वाला है।

हे करण के पुत्र ! तू राग रहित होकर विष्णु की उपासना करना और विशेष शस्त्राघात करके (शत्रुओं) की त्रिविध (गज, अश्व पैदल) सेनाओं को नष्ट कर देता है। तू नूतन शक्तिसिंह होकर सलखा के समस्त वंशजों की शोभा बढ़ा देता है।

हे चूँडा के वंशजों का छत्ररूपी वीर ! तू सांसारिक राग पर अधिक मुग्ध न होने वाला, बड़े २ शत्रुओं को नष्ट कर अपने वचन

का धनी और अतुल बली है। जोधा एवं रणमल के वंशजों में तू बड़ा और रक्षा करने के लिए तत्पर है।

हे कुल-दीपक ! तू अपने पूर्वज शक्तिसिंह, मालदेव, गांगा, बाघा और रावण के समान हठी जोधा के समान अभग वीर है। उन्हीं के समान तेरे उच्च आचरण (कर्तव्य) है।

राठौड़ विट्ठलदास (आशकरणोत, चाँदावत)

—: गीत ६८ :—

अवचींतै दुयणि पिता आहणियौ,
बाडिम जगड़-हरा धन वंश।
बेढुक हाथि तुहारै वीठल,
पग ऊपरि वलियौ परि हंस ॥१॥

खग वाहियौ इसौ खेड़ेचा,
खल माथे ऊपजिया खार।
आसा तणो वैर आसाउत,
पहर न लधियो विरद पगार ॥२॥

कलह अचूक ढकड़ै केवै,
केवी सिरि खिवियौ करग।
दुजड़ ग्राह बाखांण राह दुहुँ,
भाल सुजस चहुँ जुगां लग ॥३॥

सत्र सांकड़ै ऊधड़ै समहरि,
निजि घाइ पड़ै चड़ै कुल नीर।

वालै वैर तो जिहीं वीठल,
वैर वराह कहाड़ो वीर ॥४॥

(रच०—अज्ञात)

अर्थः—हे वीर विट्ठलदास ! अचानक शत्रु के आक्रमण करने पर तेरे पिता भी उससे भिड़ पड़े। अतः हे जगा के वंशज ! तुम्हारे इस उच्च वंश को धन्य है ! इसी प्रकार तेरे द्वारा काटे हुए शत्रु ने भी तेरे चरणों में अपने प्राणपखेरू को भेंट कर दिया।

हे आशकर्ण के पुत्र राठौड़ वीर ! शत्रु की थाह लेना वास्तव में यह विरुद तुझ पर ही फबता है, क्योंकि क्रुद्ध होकर तूने शत्रु के मस्तक पर खड्गाघात किया और अपने पिता आशकर्ण का वैर लेने में एक प्रहर की भी देरी नहीं की।

हे वीर ! तूने कपट रहित युद्ध कर शत्रु के सिर पर चमचमाती तलवार चलाई और उसे धराशायी कर दिया। अतः खड्ग चलाना और यश प्राप्त करना, ये दोनों लेख तेरे ललाट पर युग पर्यन्त लिख दिए गए हैं।

हे विट्ठलदास ! शत्रु को रौंद कर तूने युद्ध को सफल बना दिया, परन्तु तू भी घायल होकर धराशायी हो गया, फिर भी तेरे जैसा बदला लेने वाला वीर ही वराहस्वरूप कहा जाता है।

राठौड़ विट्ठलदास (गोपालदासोत, चाँपावत)

—: गीत ६६ :—

पलि भरियौ खाग पाणि वेढाअे,
घाड़ जीपण रणताल घणे।

वेढुक दल वढाली वीठल,
ताइ आगल नव कोटतणे ॥१॥

वहल कमलि वांधिए विरदे,
तूंग अगंजी पाल तण।
जैत जुआर दूसरो जैसो,
मुहियड़ थाटां निभै मण ॥२॥

पूठिवडै घातिए प्रवाड़,
रण डोहिए घणे राठौड़।
मुरधर धरा थंभ राउ–मारू,
मेर प्रजाद मयँक हर मोड़ ॥३॥

पर चाडां आडै भुज पाधरि,
खग ईंटी जागे रण जंग।
माझी माइ भवाड़ें महियलि,
औ चांपौ ऊजलौ अभंग ॥४॥

(रच०—अज्ञात)

अर्थ:—महान वीर विट्ठलदास उन्मत्त होकर बलपूर्वक विजय प्राप्त करता है। वह वीर सामना करने वाली सेना को नष्ट कर मरुप्रदेश के लिये अर्गला रूप बन जाता है।

यह पाला का पुत्र दूसरा ही जैसा (जयसिंह) है। यह (हमेशा) विशेष विरुदों से सुशोभित रहता है। वीर समूहों से यह अदम्य वीर वंदनीय है। यह वीर निर्भयता से सैन्य समूह का सामना करता रहता है।

यह चांदा के वंश का सिरमौड़ मरुदेशीय राठौड़ वीर अपनी पीठ पर महायश का भार लिये फिरता है (महा यशस्वी है)। युद्ध में यह असंख्य शत्रुओं को नष्ट कर देता है। यह वीर मरुभूमि के लिये स्तंभ रूप एवं मर्यादा का सुमेरु कहा जाता है।

यह चांपा का वंशज पवित्र एवं असंग वीर है। संसार में यह बड़ा वीर माना जाता है। यह सहज में पराई आपत्ति को अपनी भुजाओं पर उठाकर युद्ध छेड़ बैठता है। यही वीर मुख्य शत्रुओं पर आघात कर उन्हें यत्र तत्र भगा देता है।

ठाकुर वीरमदेव राठौड़ (आणेराव):—

—: गीत ७० :—

शंभू ज्ञान में सहीर रो प्रमाद भाग पायो संता,
जहांनवी नीर रो क सांपड़ेवो जन्न ।
डोरे व्रज कुंज रा समीर रो क आज दीठो,
वीरमदे हेलमे—हमीर रो वदन्न ॥ १ ॥
संपदा विहीण खीर—कन्यका संतोपियो क,
निसा भू मोतियां क सुधा सूं भरणी नखत्त ।
गाजियो त्रिसन्न रो सनेह पाम रोकियो क,
विजाहं किसन्न रो विलोकियो वखत्त ॥ २ ॥
ग्रीषमंत हुओ सुरराज रो मालयो रोम,
पगार्खो मुरणेसो वेद्य चाज रो इलाप ।
ऊखडेयो महा काल दरीद्रां अनाज रो क,
मेड़तीया गरीबांनवाज रो मिलाप ॥ ३ ॥

झालियो प्रभाते रथ चक्रवाक भाण रो क,
पाप खंड प्राण रो (क) पावियो प्रचार।
तंतसार प्राण रा प्रयांण रो मेटियो ताप,
दूदां रा दीवाण रो क भेटियो दीदार ॥ ४ ॥
समवाद रिखीकेस पाधरो संभारियो क,
सिवा देण गाथ रो उचारियो सरस्स।
बीछड़ेवो साथ रो प्रमाद भू विचारियो क,
दूजा गोपीनाथ रो जुहारियो दरस्स ॥ ५ ॥

(रच०—सुरताणिया साहिबो)

अर्थः— कवि कहता है, कि जब मेरी वीरमदेव से भेंट हुई, तब ऐसा लगा मानों योगियों को परम ज्ञानी शिव का प्रसाद मिला हो गंगा के नीर में स्नान करने का सुअवसर मिला हो अथवा ब्रजवन-निकुंज के पवन का स्पर्श हुआ हो या महादानी हेला-हमीर (व्यक्ति विशेष) के दर्शन हुए हों।

इस दूसरे ही किशनसिंह (वीरमदेव) के शासन समय का जब अवलोकन किया तब ऐसा लगा, मानो निर्धन को स्वयं लक्ष्मी ने सांत्वना दीहा. नक्षत्र पति (चंद्रमा ने) रात्रि में पृथ्वी पर सुधा-वृष्टि की हो अथवा भक्त को विष्णु ने स्नेह-पाश में ले लिया हो।

इस गरीब परवर मेडतिये (राठोड़) से मिलना क्या हुआ, मानो ग्रीष्म के अंत मे आकाश पर इन्द्र (मेघ) छागया हो, सर्प ने वीणा-नाद सुना हो अथवा भयंकर दुष्काल में अनाज का कोठा खोल दिया गया हो।

इस दूदा राजवंश के मुखिया के मुख का दर्शन क्या हुआ, मानो चक्रवाक-दंपति को प्रातः सूर्य के दर्शन हुए हों, प्राणियों को पाप-नाशक प्रयत्न मिल गया हो अथवा प्राणरक्षक कोई सार वस्तु प्राप्त हो गई हो ।

दूसरे ही गोपोनाथ (वीरमदेव) के वंदनीय दर्शन क्या हुए मानो हृषीकेश (भगवान्) की सुलभचर्चा श्रवण की गई हो. देवी ने इच्छितद्रव्य देने का वरदान दिया हो अथवा—'साथियों से बिछुड़ जाने का दुःख केवल प्रमाद है'—यह ज्ञान प्राप्त हो गया हो ।

राठौड़ विशनसिंह

गीत — ७१.

लागां सिंधवीं राग रा वाना साकुरां भड़ाला लीदां,
  त्रभागां छड़ाला आभ छवंतो ता ठोड़ ।
आहसी बिलाला चखां चोल़ ने दखावे आछी,
  रोल़ ने वाजतां ढोलां लूटली राठोड़ ॥ १ ॥

साकुरां ऊपड़ी वागां हेकपे आलमां सारी,
  हणु मार लंक ने दिखाया भारी हाथ ।
बेढीगारां रांगड़ा ऊं लगाई धगारां वातां,
  नगारां वागतां गांम लूटिया नीघात ॥ २ ॥

जडक्के खाग रा ग्रजे ठेलियां कपनी जगा,
  मारूराव धरा का लेलिया सारा माल ।
कावला रुड़ंतां जांगी हांके नराताल काछी,
  घ्राले काल़ वाली जाल़ सवाई गोपाल ॥ ३ ॥

खत्रां रुद्र छले चरडी अछकां अपासी खलां,
केवाणा खपासी सत्रां छूटो चक्र काल ।
पटैत ग्रसनो सीह छेडो छो जोधाण पती,
करलो खेड़चो मारुधरा में कुलाल ॥ ४ ॥

(रच०— अज्ञात)

जब शहनाइयों में सिंधुराग गाया जाने लगा, तब राठोड़ विशनसिंह के अश्वारोही वीरों ने हाथों में भाले लेकर आकाश को आच्छादित कर दिया । उस देव-अंशधारी वीर (विशनसिंह) ने अपने अरुण-वर्ण चक्षुओं की शोभा बढ़ाते हुए ढोल बजवाकर रोल् नामक स्थान को लूट लिया ।

घोड़ों की रास खेंचते ही सब विपक्षी एवं उनकी जनता कंपायमान हो गई । (वास्तव में) उस विध्वंस करने वाले वीर (विशनसिंह) क्षत्रिय ने—लंका में हनुमान के द्वारा किये गये कराघातों की तरह—शस्त्र प्रहार करते हुए अपनी ख्याति फैलादी तथा नक्कारे बजवाते हुए (कई) गाँव लूट लिये ।

उस प्रमत्तवीर राठोड़ (विशनसिंह) जो गोपालसिंह से भी सवाया था, ने तलवार बजाकर कंपनी के वीरों (अंग्रेजों) को ढकेल दिया और सारा माल लूटलिया । उस समय नक्कारे बजवाते हुए उस वीरने घोड़े बढा कर प्रलय-सा दृश्य उपस्थित कर दिया ।

कवि कहता है—हे जोधपुरेश्वर ! आप इस सिंह-सदृश राठोड़-वीर विशनसिंह को छेड़ते तो हैं, परन्तु यह दुष्टों के रक्त से रणचण्डी को तृप्त कर देगा, छूटे हुए काल-चक्र के समान अपनी तलवार से शत्रुओं को नष्ट कर देगा और मरु-देश मे कोलाहल मचादेगा ।

राठौड़ विहारीदास (रायमलोत)

— गीत ७२ :—

कमधां वड वडां तणा मुगता कर,
सह विधी विधि जोवतां स प्रहास ।
तू लघु वेस वडा व्रिद लाजां,
दीपे भुजे विहारीदास ॥ १ ॥

वाल लंकाल जोध वाहाला,
कलि चाला दूसरा कल्याण ।
सोहै तू दीजै ताइ साचा,
वडा वंश चा वडा वाखांण ॥ २ ॥

खत्रवट प्रगट अभँग खेड़ेचा,
भुजे ताहरे महा भल ।
कमधां सोह ऊजला कमधज,
राजे दूजा राइमल ॥ ३ ॥

भांजण खलां खाग सजियै भुजि,
त्रै वेढुक बिरद मे विसाल ।
ऊँचै चीत समोभ्रम ईसर,
कल कल कमल दिपै किरणाल ॥ ४ ॥

(रच०—अज्ञात)

अर्थ: हे विहारीदास ! राठौड़ों में तू बड़ा और अपने पूर्वजों का मोक्ष-दाता है । तेरे सब प्रकार के तरीकों को देखकर दूसरों का

परिहास होता है। अल्पायु होते हुए भी तेरी भुजाओं पर बड़े विरुद और लज्जा शोभा देती है।

हे वीर! तू महाबाहु और लंका को जला देने वाले हनुमान के समान योद्धा है। युद्ध-क्रीड़ा से तू दूसरा ही कल्याणदास प्रतीत होता है, तू महान वंश का है उसी प्रकार तेरी भारी एवं वास्तविक प्रशंसा तुझ पर फबती है।

हे अभंगवीर खेडेचे राठौड़! तेरा क्षात्रवट तेरी भुजाओं के बल पर प्रसिद्ध है। तू राठौड़ों की शोभा है, राठौड़ तेरे ही कारण उज्जवल हैं। तू दूसरा ही रायमल होकर शोभा पाता है।

हे वीर! तेरी भुजाएँ शत्रु-नाश के लिए उठी रहती हैं, इस लिए तेरे भारी शत्रु-संहारक विरुद हैं और तू उच्चमना होकर ईश्वरदास की कला को धारण करने वाला है। अतः तेरा मुख सूर्य की तरह देदीप्यमान है।

राठोड़ वनमालीदास (विहारीदासोत मेड़तिया)

—: गीत ७३ :—

दलां थंभ आगल़ धरा वीरगुर दूसरो,
गात्र राठोड़ अचड़ां रहावै।
मेड़ता मोड़ मेरा हिये मारका,
वनां जस तणा रिण तूर वावै ॥१॥
सांड सीमाड़ जग जैठ ऊँचा सिरो,
आवळे थाटि दूदां उजाळो।

द्वारा आक्रमण कर हलचल मचा देता है। लाख २ की कीमत वाले घोड़ों पर चढ़े हुए अपने सगोत्रीय वीरों तथा सेना सहित अच्छे २ पर्वतों में भाले चमकाता रहता है।

किन्नर वंशज (गंधर्व) इसके निर्भयता के नक्कारे बजाते हैं और इसके पूर्वजों के पवित्र नाम का उच्चारण करते हुए इसका यशोगान करते रहते हैं। क्षात्र-मार्ग पर तलवार का प्रयोग करता (शत्रुओं पर) सीधा बढ़ता हुआ वह अपने पूर्वज विहारीदास के समान है। संसार से विपरीत चलता (उन्मत्त) हुआ दिखाई देता है।

राठौड़ बाघा (नरबदोत, जगमालोत)

—' गीत ७४ :—

मौज वखांणिजै मन मोट मारू,
भूत्रणि पूरै भाणि।
बाघरो रिमगाह विहंडे,
खलां ऊभै खाणि ॥ १ ॥
दांन में अणरेह दीपै,
सुकरि सौर सधार।
जीपणो अरि थाट जुधि जुधि,
भांजणो गज भार ॥ २ ॥
महस बल कमध्वज राव सहविधि,
औपियो औनाड़।
निवहि खागे मभ्रम नरवद,
विसरि फौज विभाड़ ॥ ३ ॥

अभिनमौ रायांमल उजाथै,
घड़ा त्रिवधि घोइ।
पुलै खल गै छांडि पोरिस,
वाघरै खग वाइ ॥ ४ ॥

(रच०—अज्ञात)

अर्थः—हे उदार मना राठौड़ बाघा ! तू पृथ्वी पर लोगों को भाग्य-शाली बनाता रहता है, जिससे तेरी उदारता की उमग की प्रशंसा होती है। तू शत्रुओं क मार्ग पर डट कर उन दुष्टों को भी अपनी तलवार उठा कर नष्ट करता रहता है।

हे राठौड़ ! तू जिन हाथों के कारण दान देता हुआ शोभा पाता है, उन्हीं द्वारा संहार करने का भी तेरी धूम मची हुई है। तू शत्रु समूह से भिड़ कर विजय पाता रहता और उनके बड़े २ हाथियों को नष्ट करता रहता है।

हे उदार राठौड़ ! तू सब प्रकार से सहस्र गुने बल से सुशोभित हो, वीर नरवद की भ्रांति देता है। उमस कर तलवार चलाता हुआ सेना को नष्ट कर डालता है।

हे वीर बाघा ! तूने नूतन रायमल की तरह उदय होकर शत्रुओं की त्रिविध सेना (गजारोही, अश्वारोही पैदल) को नष्ट कर दिया। शत्रु तेरे खड्गाघात से साहस छोड़ कर भाग गए।

राठौड़ बल्लू (गोपालदासोत, चाँपावत)

—: गीत ७५ :—

प्रलैकाल जल वोल पतसाह दल पसरिया
सार भुज सजे जुध भार सारू।

इनि गिरां नरां अविलोप होवतां अकल,
मेर डिगियौ नहीं राव मारू ॥१॥
हुवै कलपंत है थाट चढ़िया हियै,
अवर डोलै अनड़ सुहड़ ऊझामि।
वलू साका वधी नेति सिरि वांधियै,
सानगिर रहै जेसींघ—हर सांमि ॥२॥
कोप भूतेस असुरेस होइ एक क्रित,
अभँग पण, ऊगमण निसौ आदीत।
परवतां पहां इनि वूडतां पाधरै,
चळै नहँ मेरगिर मेर उत चीत ॥३॥
सौ भडां सरिस लख सात भागा सहस,
धूहड़ां रावतै नमो खत्र धौड़।
मौड़ कटकां तणौ सोइज हूवौ मरणि,
मयँक—हर मरण रा वाँधतौ मौड़ ॥४॥

(रच०—अज्ञात)

अर्थः— जब प्रलय काल के समुद्र की तरह डुबोती हुई बादशाह की सेना बढ़ी, तब पर्वतों के सदृश अन्य वीर तो लुप्त होगये; परन्तु राठौड़ वीर (वल्लू), युद्धार्थ शस्त्र ग्रहण कर सुमेरू पर्वत की तरह अडिग रहा।

कल्पान्त स्वरूप अश्वारोही (शाही सेना का) समूह जब ऊपर चढ़ आया, तब अन्य वीर जो पर्वतों के समान थे, भयभीत होकर डगमगाने लगगये, परन्तु जयसिंह का वंशज वीर वल्लू, नेतृत्व का

चिह्न धारण कर स्वर्णगिरि (सुमेरु पर्वत) की तरह (अडिग) होकर युद्ध में डटा रहा।

वीर (वल्लू) क्रोध करने में रुद्र अथवा दानवेश के समान था। एक मात्र उस असंग वीर का उदय होना सूर्य के समान था। अन्य पर्वत काय नरेश तो उस सैन्यवारिधि में सहज ही डूब गये, परन्तु वह सुमेरु-सदृश वीर इधर से उधर (तिल मात्र भी) नहीं डिगा।

वीर वल्लू अपने साथियों सहित केवल सात संख्या में था; परन्तु (दुश्मनों के लिये) सौ वीरों के समान था। उसके सामने से हजारों योद्धा भाग गये। जिस प्रकार वह चाँपा का वंशज वीर-वल्लू सेनाओं का सिर मौड़ कहा जाता था, वैसा ही वह सिर पर सेहरा बांध कर युद्ध में मारा गया।

राठौड़ शेखा दूजन सालोत, पातावत

—: गीत ७३ :—

सिमरि गड़गड़े तूर सूरां चढ़े वीर रसि,
अछर वरिवा करै चित उमेखा।
सामि छल देस छल वेस छल सामठां,
पांपना नाहरै भागि सेखा ॥१॥

निहसिया जोध सीमांण वण सींधवै,
धार आवाहि निरवाहि कुल धोड़।
पाट अलि ओडवै लियौ जुड़ियाँ पख,
रुक हथ पागड़ौ छांडि राठौड़ ॥२॥

दळां विच हुवौ होळी खळां निरदळै,
सीस भांजै वहै सांघणां सार।
तेणि जुधिवार भूझार दूजण्ण तणौ,
भड़ अपड़ सौहियौ आचरे भार ॥३॥

ऊजळै दीहि हींगोळ—हर आभरण,
भाजती भीर भाराथि भिळियौ।
ऊजळा चिहुँर राता करै आवधां,
मुणिस—गुर ऊजळी जोति मिळियौ ॥४॥

(रच०—अज्ञात)

अर्थः—हे वीर शेखा! जिस समय जोरों से तुरही आदि रण-वाद्य बजने लगे तथा अप्सरा-वरण की अभिलाषा से योद्धाओं में वीर रस छाने लगा, तब स्वामी, देश एवं क्षत्रियत्व के बाने की रक्षा करना तेरे हिस्से में आया।

युद्ध में जब योद्धा मारे जाने लगे तथा जोरों से नक्कारे बजने लगे, तब हे राठौड़ वीर! तू अपने वंश की टेक (मर्यादा) निभाता हुआ तलवार चलाने लगा और अंत में राज्यसिंहासन की रक्षा का जो तू अवसर चाहता था वह तुझे मिल ही गया तू अपने उद्देश्य की पूर्ति के लिये पैदल होकर खड्ग—युद्ध करने लगा।

हे दुर्जनशाल के वीर पुत्र! तू सहज ही में धराशायी होने वाला वीर नहीं था। तूने ही युद्ध—भार ग्रहण किया एवं सेनामें घुसकर शत्रुओं को विनष्ट करते हुए होलिकोत्सव रच दिया (रक्त रंजित होगया) और खड्गाघात से अपना मस्तक कटवा कर जुझार (युद्ध मे मरने वाला वीर) नाम प्राप्त किया।

हे हिंगोल के वंशज ! तू कुल-भूषण है। तू अच्छा दिन पाकर शत्रु-समूह को काटता हुआ युद्ध भूमि में उतर पड़ा और अपने श्वेत केशों को रक्त से रँग कर ईश्वर की ज्योति में मिलगया।

राठौड़ शेरसिंह (मेड़तिया)

—: गीत ७८ :—

जामो दोयसे हाथ रो अंगां सो हाथ रो पायजांमो,
समांमो त्रिखंग घेटो लपेटो सकाज।
आफालियौ रालियौ सांकड़े तुरी सदा नचाळै,
उजालियो वांकड़े वांकड़ा पणो आज ॥१॥

सिर पेच छोगा तोड़ा पवीता किलंगी सेली,
फूलवेली रंगरेली एक पेचा फेर।
लागां गजगाह वांना लोयणां परी रा लोभा,
सोभा तोरां अड़ीरां चढ़ाई मारू सेर ॥२॥

पीधां फूल प्यालां छझाल जाणे छूटां पटां,
गुलाबां चौसरां भरां डंबरां गुलाब।
अचीढ़ा दोयणा वाली वाटी घणी फौज अणी,
अचींटे अँगोटे मारू चाटी वणी आब ॥३॥

सेल जमदाढ खाग बेंत्र धारी वाही सही,
मजे सेक दाई हरा रो अजारे खाई सांक।
अमी रेल अमीराई पाई सो दिखाइ आछी,
अड़ी गई धीठाई वालियौ आडे आंक ॥४॥

पाव छडे नागाणेस जोधाणेस चढे पांणी,
सूर वागां खडे रभा वरे सेरसाह।
ऊंटिया झलूसां साजां वींदरां समाजां आयो,
इंदरां मंदिरा छाजा हौकवा ओछाह ॥५॥

(रच०—कवियाकरणीदान)

दो सौ हाथ कपडे का वनाहुआ जामा (अँगरखा), सौ हाथ कपड़े का वना हुआ पाजामा, उसके अनुरूप त्रिकोण पगड़ी और दुपट्टा (कटिबंध) धारण किये हुए बांके वीर (शेरसिंह) ने युद्ध-आपत्ति छाने पर हमेशा की तरह घोड़े को सवेग वढ़ा कर अपने बांकेपन को उज्ज्वल कर दिया।

मस्तक पर सिरपेच, छोगा किलंगी, जाड़िया, गले में पवित्रा (सुनहरे तारों की माला), शेली, रंगीन पुष्पों की माला तथा पैरों में आभूपण धारण किये हुए एवं घोड़े पर गजगाह डाले हुए उस अप्सरा (वरण) के इच्छुक राठौड़ शेरसिंह ने (युद्ध में) भिड़कर अपनी शोभा और अधिक बढ़ा दी ।

मदिरा पिये हुए गले में गुलाव-पुष्प की माला डाले एवं गुलाव के इत्र का सौरभ फैलाते हुए उस राठौड़ वीर ने मस्त हाथी की तरह झपट कर अड़ाकू शत्रुओं की बहुत सी सेना को नष्ट करदिया और अपने बॉकेपन (वीरत्व) पर (और अधिक) आव (कांति)चढादी।

जव महाराजा अजितसिंह (जोधपुरेश्वर) का पुत्र सशंक हो गया, तव भाला, कटारी एवं दो-दो तलवारें कसकर हरा (हरिसिंह) का विजयी पुत्र (शेरसिंह) सज्जित हुआ और शस्त्र प्रहार कर उस अमीर ने नरेश्वर द्वारा जो सम्मान प्राप्त किया था, उसे सार्थक कर दिया और धृष्ट शत्रुओं से भिड़कर स्वामी के सिर पर एहसान कर दिया।

शेरसिंह ने भिड़कर नागोर के बख्तसिंह को भगा दिया और जोधपुर-नरेश रामसिंह के मुख पर कांति छा दी। (इस प्रकार) वह वीर बहादुरों से जूझता हुआ दुलहे की तरह अप्सरा का वरण कर स्वर्ग चला गया। (स्वर्ग में) उसे आया देखकर इन्द्रभवन में विशेष उत्सव मनाया गया।

राठौड़ शेरसिंह (मेड़तिया)

—: गीत ७८ :—

गजां माहरेस हाथलां जोध छूटो कुसळेस गाजे,
कायरो पराजे बोले बाहरै करूप।
अमामो जोधार खेत ओछाह रै राज आयौ,
सूर रांमसींघ साम्हो राह रे सरूप॥१॥

छरा कोह ओप दीह अंधकार रोण छायो,
जुडंतो अथायो जै हगेलां सेन जार।
धरा भांण अभैसींघ जायौ देख चांपा धणी,
भृनिरास दैंत जेम धायो नेग धार॥२॥

राती चखां राती झाळ काळी सल्है काल रूप,
रुद्र चडी वीरभद्र करतो आरोध।
दोड़ियो सांमहो आखे खाथा सूं हरामी दूठ,
जांणे बिना माथा सूं बिराच बालो जोध॥३॥

गजां नेजां तूट तेण ताप सूं अयास गाज,
जनेवां सरीत वाज वीती घौर जांम।
हरा वाळे राह भांण रामसिंघ ग्रह्यो हूंतो,
सेरसिंघ माथा साटे उग्राह्यो सग्रांम ॥४॥

(रच०—कविया करनीदान)

अर्थः - जिस प्रकार सिंह, हाथियों पर झपटता है, उसी तरह वीर कुशलसिंह भी गर्जना करता हुआ दुश्मनों पर झपटा। उस भयानक वीर को देखकर कायर क्रंदन करते हुए भागने लगे। वीरता में छका हुआ वह उत्साही वीर युद्धक्षेत्र में रामसिंह (जोधपुरेश्वर) पर राहू के समान चढ आया।

जब वीर चांपावत अभयसिंह के सूर्य-रूपी पुत्र पर विनामस्तक दैत्य (राहू) की तरह खड्ग ग्रहण कर दटा तब वह घोड़े की रास ऐंच हरावल के योद्धाओं का भक्षण (नाश) कर तृप्त हो गया तथा आकाश तक अंधेरा छाने से दिन रात्रि-सा प्रतीत होने लगा।

अग्निज्वाला के समान लाल आंखों वाला वह वीर कवच कसने पर कालस्वरूप होगया एवं चण्डी तथा वीरभद्र का आह्वान करता हुआ (जोधपुर स्वामी रामसिंह के) असंख्य विरोधियों को साथ में लेकर विना मस्तक के विराच-पुत्र (राहू) की तरह (रामसिंह के) ऊपर झपटा।

उस वीर के आतंक से हाथियों पर फहराती हुई पताकाये टूट पड़ी आकाश भी प्रतिध्वनित हो उठा तथा तलवारों के चलने से एक प्रहर तक भयानक दृश्य छा गया। उस हरा (हरिसिंह) के पुत्र ने राहुरूप होकर राठौड़-नरेश रामसिंह को ग्रस ही लिया होता, यदि, तत्क्षण वीर शेरसिंह ने युद्ध में अपना मस्तक नहीं कटाया होता।

राठौड़ शेरसिंह (मेड़तिया)

—: गीत ७६ :—

त्रखंग लपेटा बंध गजकंध तोडण ग्रगड़,
तेण धारक मगज साख तेरा।
निहंग उतोल भड़ राड़ि नेजायतां,
सदा अड़पायतां धाड़ि सेरा ॥१॥

इकाबँध कमँध आरक चसम डोरियां,
गिरँद तारक रिछक समे गजगाह।
सदारा जोध वेढ़ाक मारक सत्रां,
अभीडा पेच धारक निखँग बाह ॥२॥

त्रखंग भड़ डाक वागी महण तटाका,
रिमा घड़ दहण आसक चहण रंभ।
असमरां वहण मातां खहण अखाड़ा,
खांगड़ा कमँध धाड़ा अड़ीखंभ ॥३॥

वाँकड़ा मरद हद गीत ग्रद बांकड़ा,
मरद लहरीक वाकीम तण मेच।
सेर थारे कमल् बणे सोभा मणा,
पाघड़े डीघड़े वांकड़ा पेच ॥४॥

(रच० कविया करणीदान)

अर्थ:—त्रिकाल पगड़ी बांधनेवाले, खड्गाघातों से हाथियोंके
ंध तोड़ देने वाले, राठौड़वंश की त्रयोदश शाखाओं को गौरवान्वित

करने वाले आकाश को उठाने वाले, बर्छीधारियों से भिड़ने वाले एवं शत्रुओं से अड़पड़ने वाले वीर शेरसिंह ! तुझे धन्य है ।

हे सरदारसिंह के वीर पुत्र ! तू (दुश्मनोंपर) धावा करने वाला (अथवा तेरे यहां नक्कारे बजते रहते हैं), अरुण सूर्य के समान लाल नेत्रों वाला, पहाड़ों को पानी में तैरा देनेवाला (राम का अवतार), ग्राह द्वारा आपत्ति में पड़े गज को बचाने वाला (विष्णु), मारकाट करने वाले शत्रुओं को नष्ट करनेवाला, पगड़ी के अटपटे पेच रखने वाला और कंधे पर भाथा कसा रखने वाला है ।

हे त्रिकोण पगड़ी धारण करने वाले वीर ! तेरा यश समुद्र तट तक फैल गया है । तू शत्रु—सेना का नाशक, रंभा का प्रेमी और युद्ध क्षेत्र रूपी अखाड़े में उतर कर प्रमत्त वीरों का विनाश कर्त्ता है । हे दृढ स्तंभरूपी खड्गधारी राठौड़ वीर ! तुझे धन्य है ।

हे बहादुर वीर ! तू स्वयं, तेरा यशोगान, उदारता की लहरें और अंगवट (स्वाभिमान) सब के सब बाँके हैं । तेरे मस्तक पर बड़ी पगड़ी के बांके पेच भी अधिक शोभा देते हैं ।

राठौड़ श्यामसिंह (कर्मसेनोत एवं चन्द्रसेनोत)

—: गीत ८० :—

पर धरा प्रगट मोटा दन पांणी,
झैत जुवार महा जुध जीत ।
सूर सधीर छजै भुजि सांमा,
चंद तणी बाडिम बड चीत ॥१॥

दीपे जस भाखै वंस दीपक,
सारां बलि जीपण समर ।
कमधज सोहै सु वपि कमाउत,
मालाउत वालो मछर ॥२॥
पौरिस अतव बखाणै पर खँडि,
वैर विभाड़ण खाग वह ।
अगर-हरा सोहै भुजि उग्रित,
गंग कलोधर तणो गह ॥३॥
खेड़ सुपह मोटा व्रिद खाटण,
वेढ़क चिति धरियै खत्रवाट ।
पाटि जेणि राजै पाटोधर,
कीरति तयै न लागै काट ॥४॥
(रच०—अज्ञात)

अर्थः--हे श्यामसिंह ! तू अपने सौभाग्य के कारण पराये भू-भाग में भी प्रसिद्ध है। महान् युद्धों में विजय पाने के कारण लोग तुझे विजयी कहकर तेरी वन्दना करते हैं। तेरी भुजाओं पर धीर-वीरता शोभा देती है। उदार चित्त चन्द्रसेन के समान तुझ में बड़प्पन है।

हे राठौड़ वीर ! तेरा यश देदीप्यमान होने से तू कुल-दीपक कहाता है और युद्ध विजयी वीरों में तू श्रेष्ठ एवं बलवान है। कर्मसेन के समान तू सुन्दरकाय और माला (मालदेव) के समान मस्ताना है।

हे अगरा (उग्रसेन) के वंशज ! पराये भू-भाग में भी तेरे पुरुषार्थ की प्रशंसा होती है। शत्रुओं को नष्ट करने के लिए तेरी

भुजाएँ उठी रहती हैं और तू तलवार चलाता रहता है। गांगा के वंशजों के समान ही तुझ में गंभीरता है!

हे खेड़ेचे (राठौड़) नरेश! तू बड़े २ विरुद प्राप्त करता रहता है। तू क्षात्र-मार्ग पर चलता हुआ शत्रुनाश की ओर चित्त लगाए रहता है। अतः तू जिस सिंहासन को सुशोभित किए हुए है, उस पर आसीन होने वालों की कीर्ति को कभी कालिमा ने स्पर्श तक नहीं किया।

राठौड़ सूरजमल (मेड़तिया):—

—गीत ८१ :—

बेडा झोकणा अभीडा रभा रोकणा(विमाण)वेता,
वोकुणा सकत्ती रत्ती ठोकणा असंभ।
नमो खत्रीवट्टां चाला कपट्टा होता निराला,
खांगड़े पाघड़े (वाला) काला जेतखभ ॥१॥

जूथमे जमाती जिको सही जांणे भद्र-जाती,
लायणा प्रभाती तेज प्रभू घाती लाज।
मद रा छाकिया जेम गेंडाका उछाल मेळे,
नाकिया फूलती जीही पछेटे नाराज ॥२॥

रचे आगाहट्टां दवागट्टां खेर सट्टां,
खाखट्टां फेकटां नट्टा थूरथट्टां खेस।
नजारां गूघट्टां पग फांकट्टां प्रकट्टां नट्टां,
कपट्टां न रीझे सूजो दूजो कुसळेस ॥३॥

चढंती क्रामती रत्ती प्रकती विभ्रत्ती चत्ती,
कीरत्ती बरत्ती इत्ती दत्ती रोर काप।
जेत हत्ती नेत रत्ती परत्ती कछोट जत्ती,
जपे मेदपाट पत्ती विजाई प्रताप ॥४॥

(रच०—अज्ञात)

अर्थः—हे तिरछी पगड़ी बांधने वाले प्रमत्त वीर ! तेरा क्षात्र-विनोद (क्षत्रियोचित युद्ध-क्रीड़ा) वंदनीय है। तू घोड़े को सवेग बढ़ाने वाला, अप्सराओं के चलते हुए विमानों को रोक देने वाला, शक्ति (देवी) को रक्त-पान कराने वाला, बलवानों को आहत करने वाला और विपक्षियों द्वारा छद्म युद्ध होने पर अडिग विजयस्तंभ बन जाने वाला है।

हे वीर ! सैन्य समूह में जो प्रमुख वीर है, वे तुझे भद्रजाति हाथी के समान समझते हैं। तेरे अरुणनेत्र प्रातःकालीन सूर्योदय की अरुणिमा को लिये हुए हैं, जिनमें ईश्वर ने (क्षत्रियोचित) लज्जा को भी स्थान दे रखा है। तू मदिरोन्मत्त-सा होकर घोड़े को कुदाता हुआ (दुश्मनों का) सामना करता और पुष्प वर्षा होते हुए (शत्रुओं पर) शस्त्र वर्षा करता है।

हे सूरजमल ! तू दूसरा ही कुशलसिंह है तू अपनी कुशलता के लिये आशीर्वाद देने वाले कवियों एवं द्विजों आदि (गुरुजनों) को पुश्त दर पुश्त तक के लिये भूदान कर उसके ताम्रपत्र देता हुआ कृपणों के मुख पर छार डलवा देता है। और भारी शत्रु और भारी शत्रु-समूह को युद्ध से भगाता रहता है। तुझे नट के समान चपलता से तलवार चलाता हुआ देख कर अप्सरायें घूंघट से कटाक्ष करती हैं।

हे वीर ! तू छली पुरुषों (छद्म युद्ध करने वालों) से कभी प्रसन्न नहीं होता।

हे वीर ! तू विशेष भाग्यशाली है। स्वभाव से ही तू प्रत्येक से प्रेम करता है और उदारचित्त ? है। हे दानी ! तूने अपना यश सीमा-पर्यंत फैला दिया है, जिससे दारिद्र नष्ट हो गया। जयश्री तेरे हाथों में निवास करती है। दत्तचित्त होकर तू सेना का नेतृत्व करता है। परस्त्री के लिये तू यतिरूप (संयमी) बनजाता है। यही कारण है, कि मेवाड़ेश्वर भी तुझे तेरे पूर्वज प्रतापसिंह के सदृश वीर कहते हैं।

राठौड़ सुजानसिंह (ईसरोत)

—: गीत ८२ :—

ऊपजियै विखै कौपियै असपति,
चीत अडोल प्रभति चड़ियौ।
सक लोकीक ऊजलौ सूजौ,
ताइ अपलोकि न आभड़ियौ ॥१॥

हैवै राव रूठै हिंदुवांणै,
प्रळै ताप उरि परवरिया।
आधरम तणा पटा आसाउत,
उतवँगि चाढि न आदरिया ॥२॥

विसमें दीहड़ों लियै व्रहमँड,
अणभँग भुजि ओडै असमांन।

मेळै नहँ मिळियौ मेड़तियौ,
मन ऊजळै अभिनमौ मान ॥३॥

आधख वधे सुजाण अतुल बल,
असुरां सुरां विचै अनिभंध।
पाट भगत अवियाट खत्रिपण,
काट अलागै तपै कमंध ॥४॥

(रच०—अज्ञात)

अर्थः—हे वीर सुजानसिंह ! तेरे सिर पर आपत्ति आगई और बादशाह भी रुष्ट होगया, फिर भी तेरा चित्त विचलित नहीं हुआ। तूने (अपने) प्रभुत्व को नहीं खोया। क्योंकि तू संसार में प्रसिद्ध वीर और उज्ज्वल माना जाता है। इसीलिए तूने बुरे लोगों (यवनों) से संपर्क नहीं किया।

अश्वारोही सेना के स्वामी (बादशाह) के रुष्ट होने पर उसके प्रलय-सदृश ताप से प्रत्येक हिन्दू वीर पतित होगया; परन्तु हे आशकर्ण के वंशज ! तूने शाह द्वारा अधर्म पूर्वक दिए जाने वाले पट्टों (जागीर की सनदों) को सिर पर चढ़ा कर उनका सम्मान नहीं किया।

हे मेड़तिये (राठौड़) वीर ! तू तो नूतन मानसिंह है। आज का समय आश्चर्यजनक है। सारा विश्व (शाह) के सामने हाथ फैलाता है। परन्तु तेरी अभंग भुजाओं ने आकाश का स्पर्श कर लिया है। हे उज्ज्वल मनवाले ! तू ही उस मेले में सम्मिलित नहीं हुआ (शाही सेवा स्वीकार नहीं की)।

हे अतुलवली सुजानसिंह ! तेरा साहस अकथनीय है। तू देव और दानवों से भी विशिष्ट है। हे राज्यसिंहासन के रक्षक ! तेरा क्षत्रियत्व प्रसिद्ध है और तू निष्कलंक राज्य करता है।

राठौड़ सुजानसिंह (आसकरणोत, ईसरदासोत)

—: गीत ८३ :—

ओखालण सत्रां ऊभियै असिमर
पाट ऊधोरण अवट प्रमांण।
तूं ई सरे अभिनमा ईसर,
सींगालौ ऊजलौ सुजांण ॥१॥

रिम रेहलण रूप रज राखण,
घाये भिड़ि भांजण थट घाट।
अतुली बल अणकल आसाउत,
कमधज धमल अलागै काट ॥२॥

खल खेगरण वडा व्रिद खाटण,
वैरां सूं चालवण विरोध।
सामि सनाह दुवाहा सामँत,
जगि जणियार कलोधर जोध ॥३॥

सक सीमाड़ सांड नवसहसा,
दै विधि अजुवालण कुलवाट।

वप वाडिम सारिखो वेगड़,
मान कलोधर लोह मराट ॥४॥
(रच०—अज्ञात)

अर्थः—हे नूतन ईश्वरदास कहे जाने वाले सुजानसिंह ! तू धवल वृषभ तुल्य (बलशाली) है, जो अपने दोनों हाथों में ग्रहण की हुई (शृंगरूपी) तलवारों द्वारा शत्रुओं को फेंक देने वाला और राज्य-सिंहासन की रक्षा कर असंभव को संभव करने वाला एवं (बलवानों) में तू ही श्रेष्ठ है।

हे अवर्णनीय एवं अतुल बलशाली राठौड़ ! तू धवल वृषभ तुल्य है। तेरे शरीर पर कहीं भी काला दाग (कलंक) नहीं। तू शत्रुओं को रौंदने वाला, रजोगुण प्रधान और शत्रु-समूह से भिड़ कर उसे नष्ट कर देने वाला है।

हे जोधा की कला को धारण करने वाले वीर ! तू संसार में धवल वृषभ तुल्य है। शत्रुओं से छेड़छाड़ कर उन्हें काट कर तू बड़े २ विरुद प्राप्त करने वाला और अपने दोनों हाथों से स्वामी की रक्षा करने को कवच तुल्य सामन्त है।

हे मानसिंह की कला को धारण वाले राठौड़ वीर ! तू सीमा पर रहने वाले सिक्का धारियों (प्रसिद्ध युद्ध कर्ताओं) मे महान् वृषभ है। तू कुल-मार्ग को दोनों तरह से पवित्र करने वाला है। एक ओर तुम्हारा शरीर उच्च वृषभ सा बलिष्ठ है, तो दूसरी ओर तुम्हारे शस्त्र-मार देने वाले हैं।

राठौड़ सुजानसिंह (रायसिंहोत, चाँदावत)

—: गीत ८४ :—

पर घड़ा वरण पर चाडां पैसण,
जगत वखांणै चंद जिम।
खाटै खगे नवा खैडेचो,
करे पुराणा वैर क्रिम ॥१॥

जगि जग जेठ पर छटी जागे,
रायासिंघ तणौ रढ-रांण।
ढीलै केम उथालण ढालां
सुजि केवा आप रा सुजांण ॥२॥

मांझी मार सारि मुणसां गुर,
वीरारसि गज फौज वरै।
केवां धणी काजि के वेलां,
कविलौ नह डाहगल करै ॥३॥

उग्राहियौ रांम अतुली बल,
हाथालां दीपियौ हव।
दैख तुहारौ चंद दूसरा,
वैरां घसि घाए विसव ॥४॥

(रच०—अज्ञान)

अर्थ:—हे राठौड़ वीर ! तू दूसरों की सेना पर विजय पाने वाला तथा दूसरों की विपत्ति में सम्मिलित होने वाला है, अतः संसार तुझे,

तेरे पुरुषा चाँदा के तुल्य मान कर प्रशंसा करता हुआ कहता है कि यह शत्रुओं की शत्रुता को पुरानी नहीं होने देता। तलवार के बल पर उनके साथ नई २ शत्रुता बनाता रहता है।

हे रायसिंह के पुत्र (या वंशज) सुजानसिंह! तू संसार के वीरों में सबसे बड़ा जागृत वीर माना जाता है। दूसरे की सहायता करने के लिए तू सदा तत्पर रहता है। हठीले रावण के समान तू ढालधारी, शत्रुओं को पछाड़ने में कभी विलम्ब नहीं करता, क्योंकि तू यह जानता है कि शत्रु कभी अपने नहीं होते।

हे वाराह तुल्य वीर! तू श्रेष्ठ पुरुषों का गुरु, प्रमुख शत्रुओं का नाशक और वीरता में आकर गज-सेनाओं पर विजय पाने वाला है। स्वामी के शत्रुओं के (विनाश) के लिए तूने कभी देरी नहीं की और न उनके साथ भलमनसाहत का ही व्यवहार किया (क्रूर बना रहा)।

हे चाँदा के समान अतुल बली वीर! तूने (अपने स्वामी) रामसिंह को बचा लिया, जिससे तेरा बाहु बल प्रकाश में आगया। तूने शत्रुओं को रगड़ कर पृथ्वी में घुसेड़ दिया।

राठौड़ सबलसिंह (उदयसिंहोत तथा रायमलोत)

—: गीत ८५ :—

जोअंतां खाग तियाग जोअंतां,
अतुळी बळ सह विधि अकळ।
परियां तणा सुजे पाटोधर,
सबळा विरद छाजै सबळ ॥१॥

असिमर त्रै पेखतां असंकित,
 सूरां गूरू जग पुड़ि स प्रमांण।
 सुकरे दादा रणा सिंघ सुत,
 वड कमधां ओपे वाखांण ॥२॥

सुजड़ै चाड़ अचल हर सांमी,
 पिसणा रोर उथापि पौह।
 कुल आप रे तणा आवरि क्रित,
 सयलि प्रमति चाढिया सौह ॥३॥

(रच०—अज्ञात)

अर्थः—हे (अपने पिता के) सिंहासन पर सुशोभित होने वाले वीर सबलसिंह ! खड्ग ग्रहण करने और त्याग करने (दान देने) में तेरे समान कोई नहीं है और सब प्रकार से तू अवर्णनीय है। अपने पुरुषार्थों के विरुद तेरी भुजाओं पर शोभा देते हैं।

निः संकोच तलवार पकड़ना और दान देना, ये दोनों बातें देखते हुए ससार में तुझे वीर गुरु कहना प्रमाण युक्त है। हे राठौड़ सिंहा (उदयसिंह) के पुत्र ! तेरे दोनों हाथों की प्रशंसा तेरे पितामह के समान ही है।

हे अचला (अचलदास) के पौत्र (या वंशज) ! शत्रु और दरिद्रता को तू क्रमशः तलवार तथा प्रेम से हटा देता है। यह तेरे वंश का स्वभाव है। उस कीर्ति का सम्मान कर तू ने उसे सहज ही अधिक देदीप्यमान कर दिया है।

राठौड़ हरिसिंह (केसरसिहोत, राजाउत)

—: गीत ८६ :—

चित चाउ वधै खत्रवाट न चूकै,
महि मंडण छिलतै मछरि ।
हेड़ण है-थाटां हाथाळौ,
हरी वडाळौ गंग—हरि ॥१॥

केहरि तणौ धारियै कुळ क्रित,
दळ सूरत पूरियौ दुभाल ।
मोड़ण गज डसण राव मारू,
महण अजाद अभिनमौ माल ॥२॥

ऊदा—हरौ वडिम आवरियै,
गढ़पति भरियौ महा गहि ।
जुध मोट जीपण जोधपुरौ,
मोटे कुळ आभरण महि ॥३॥

वाल धमळ धूहड़ विरदां पति,
दळ—नाड्क ऊदमादम ।
केहरि पिना जगड़ वंधव का,
दोइ जस रथ खंचै दुगम ॥४॥

(रच०—अज्ञात)

अर्थः—वीर हरिसिंह के चित्त में उत्साह की वृद्धि होती रहती है। वह क्षात्र-मार्ग को भूलता नहीं। अपने कराघात द्वारा अश्वारोही

समूह को नष्ट करने में यह अपने सिंह तुल्य पूर्वज गांगा के समान है ।

केशरीसिंह का पुत्र यह राठौड़ वीर अपने कुल-कर्म पर चलने, सेना में भयानक वीरता प्रदर्शित करने, हाथियों के दांत मोड़ देने और नूतन मालदेव कहला कर समुद्र के समान मर्यादा का पालन करने वाला है ।

ऊदा का वंशज यह दुर्गाधिप मरु देशीय वीर अपने पूर्वजों के समान ही व्यवहार कुशल तथा महान् गंभीर है । बड़े २ युद्धों में विजयी होकर यह अपने महान् कुल का विभूषण कहा जाता है ।

यह राठौड़ वीर धवल वृषभ तुल्य होकर विरुद धारण करने वाला है । युद्ध के समय यही सेनापति माना जाता तथा अपने पिता केशरी-सिंह और भ्राता जगा के यश रूपी दो-दो भारी रथों को यह अकेला खींच कर आगे बढ़ाने वाला है ।

राठौड़ हरिसिंह (राजावत)

—: गीत ८७ :—

अति दाखै हेत जाणि आपांणां,
घणा दान सनमांन घणौ ।
करता करै जमारौ कवियण,
तौ वारै हरियंद तणौ ॥१॥

आडा सहै अणथि ऊथापै,
भल रूपकां वधारै भाउ ।
रेण अनंत करै जौ रेणां,
राजि तणौ राठौड़ां राउ ॥२॥

आप प्रमाणि चहौड़ै आश्रख,
केहरि कौ मोटा करग।
जौ अवतार दियै हरि जाचण,
जरू वार साधार जग ॥३॥

ऊदा—हरौ ऊभियै असिमरि,
ओपे दिली दलां अणी।
अंमिया जनम तणो फल पात्रां,
धूहड़ राउ पामिये धणी ॥४॥
(रच०—अज्ञात)

अर्थः—कवि कहता है कि यह अपना समझ कर विशेष प्रेम प्रदर्शित करता और विशेष सम्मान के साथ दान देता है। अतः हे प्रभो ! यदि कवि जाति में जन्म दे तो हरिसिंह का आश्रित बनाना।

अंट शंट बात कहने पर भी यह अनहोनी बात को चित्त में स्थान नहीं देता और अच्छी कविता पर अधिक सद्भाव प्रदर्शित करता है। अतः हे प्रभो ! यदि कवि अथवा रजकण भी बनाए तो इस राठौड़ के भू-भाग पर बनाना।

यह महाबाहु केशरीसिंह का पुत्र कवियों को अपने समान, अपितु अपने से भी अधिक मानता है। हे हरि ! यदि याचक बनावे तो अवश्य ही इस संसार के आश्रय रूपी वीर के यहाँ बनाना।

यह ऊदा का वंशज तलवार उठाए हुए दिल्लीश्वर की सेना के अग्रभाग में सुशोभित होता है। हे प्रभो ! यदि कवि जाति में जन्म दे सफल बनाना है, तो इस राठौड़ वीर को ही स्वामी बनाना।

राठौड़ हरिसिंह (या हरराज)

—: गीत ८८ :—

दळां सांवळां स गाह हींदू राह त्रे मखाणे रीति,
धरे आभि थांभा करे मालदेया धोड़।
केवाणा अभंग त्रै फरग नंगि सीसि कीधे,
राठौड़ां उजाळे हरी ऊजळौ राठौड़ ॥१॥

धमंके असहां सीस जस रा नीसांण ध्रींवे,
बिरदां चवारै तणा जग हथां बंध।
केहरी सुजाउ करां ऊधरा वडाला क्रित,
कमंधां भवाड़े भला वडालौ कमंध ॥२॥

आउलां सुभट्टां थाट खग्गवाट भुजे ओपे,
लाख गज बाज मोजां गजां—फौजां लोध।
जुवे जैतवंत जग जेठी वंस छळां जागै,
जोधपुरां मोह चाढ़ै अभिनमौ जोध ॥३॥

हेड़ै वण थाट हाथां हेक कुळवाट हालै,
गाढां गुरु दूजो गंग गाढां गंजै गाउ।
आगळ दिलेस संन ऊदा—हरौ ऊचीताण,
राजे रज रज रखपाल मारू राउ ॥४॥

(रच०—अज्ञात)

अर्थ—यह हिन्दू वीर राठौड़ हरिसिंह (या हरिराज) जब भाला ग्रहण कर सेना में सुशोभित होता है, तब दोनों दीन (हिन्दू-

यवन) इसके युद्ध के तरीके की प्रशंसा करते हैं। धूहड़ (राठौड़) मालदेव का यह वंशज अपने स्तंभ रूपी हाथों पर आकाश को उठा लेता और युद्ध में अभंग शत्रुओं के सिर पर तलवार चलाकर राठौड़ों को उज्ज्वल कर बताता है।

जब इसके यश के नक्कारे बजते हैं, तब विरोधियों के मस्तक में चोट पहुँचती है। इस के विरुदों में वृद्धि होती देख कर संसार इस की वन्दना करता है। इस केशरीसिंह के पुत्र के हाथ (युद्ध और दान) के लिए उठे रहते हैं, जिससे विशेष कीर्तिमान होकर यह राठौड़ वीर, राठौड़ों को अच्छा कहलाता है।

अपने वट खाते हुए साथियों के समूह सहित इसकी भुजाओं पर क्षात्र-वट शोभा पाता है और उमंग के साथ अपने लाखों हाथी और घोड़ों को बढ़ा कर गज-सेना को कुचल देता है। यह युद्ध विजयी संसार में बड़ा कहा जाने वाला सदा अपने वंश की रक्षा के लिए जाग्रत रहता है। यह नूतन जोधा, जोधा के वंशजों की शोभा बढ़ाता रहता है।

यह अपने हाथों से विशेष शत्रु-समूह को विदीर्ण कर केवल अपने कुल-मार्ग पर चलता रहता है। दृढ़ वीरों में यह दूसरा ही सांगा है। यह शत्रुओं के दुर्गों सहित ग्रामों को नष्ट कर देता है। जोधा का वंशज यह राठौड़ वीर दिल्लीश्वर की सेना के लिए अर्गला बन कर विशेष हठ ग्रहण करता और राज्य एवं रजोगुण का रक्षक बन शोभा पाता है।